

LL.B. (3 Yrs.) Ist Semester

Paper – V – LAW OF CRIME (अपराध विधि)

प्र0.1 अपराध क्या है? परिभाषित करें। अपराध के आवश्यक तत्वों का वर्णन करें तथा अपराध विधि के व्यावहारिक दृष्टिकोण का वर्णन करें।

उत्तर अपराध सम्पूर्ण समाज के विरुद्ध विद्रोह है। अपराध ऐसा कृत्य है जिससे न केवल पीड़ित व्यक्ति त्रस्त होता है बल्कि समस्त समाज भी त्रस्त होता है। साधारणतः अपराध सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करने वाला यह दोष है जिसे विधि द्वारा निषिद्ध एवं दण्डनीय घोषित किया गया है।

ब्लैकस्टोन के अनुसार अपराध एक ऐसा कृत्य या लोप है जो सार्वजनिक विधि के उल्लंघन में किया गया है तथा राज्य द्वारा निषिद्ध अथवा आदेशित है।

स्टीफेन के अनुसार अपराध का तात्पर्य ऐसे अधिकारों के अतिक्रमण से है जिन अधिकारों का अतिक्रमण परिणामित रूप से समाज के लिए क्षतिकारक होता है।

बेन्थम के अनुसार अच्छाई या बुराई की प्रत्याशा से युक्त होने के कारण, विधायन द्वारा दण्डनीय प्रत्येक कार्य अपराध कहलाता है। अनुशासित अपराध का आवश्यक लक्षण होता है।

पैटन के अनुसार अपराध वह कार्य है जिसमें कार्यवाही करने का अधिकार राज्य के पास आरक्षित होता है। राज्य अपराधी को दण्डित भी कर सकता है और क्षमा भी कर सकता है।

1- अपराध ऐसे **मानव प्राणी (Human Being)** द्वारा किया गया जो विधिक दायित्व के अधीन हो।

- 2- उसका कार्य **दुराशय** या आपराधिक आशय (Mens Rea) से युक्त हो।
- 3- दुराशय के अनुसरण में **कार्य या लोप** (Act or Omission) किया गया हो।
- 4- ऐसे कार्य से मानव या समुदाय को **क्षति** (Injury) हुई हो।

➤ **अपराध के आवश्यक तत्व-**

- 1- मानव प्राणी:- किसी कार्य को अपराध के रूप में दण्डनीय होने के लिए किसी मानव द्वारा किया जाना चाहिए। प्राचीन समय में पशु और निर्जीव वस्तुओं का भी दण्ड दिए जाने के प्रमाण मिलते हैं परन्तु अपराध के अनिवार्य तत्व के रूप में 'दुराशय' की अवधारणा के विकास के साथ ही पशु व निर्जीव वस्तुओं के परीक्षण व दण्ड को त्याग दिया गया। दुराशय की अवधारणा के कारण मानव ही अपराध हेतु दण्डित किया जा सकता है क्योंकि वही अपनी विचारशीलता से कोई कृत्य करता है।
- 2- **दुराशय** :- अपराध विधि की मुख्य उक्ति है- "मात्र कार्य किसी को अपराधी नहीं बनाते, यदि उसका मन भी अपराधी न हो"। (Actus no facit reum nisi mens sit rea)। तात्पर्य है कि कार्य स्वयं किसी को दोषी नहीं बनाता जब तक उसका आशय वैसा न रहा हो। इसी उक्ति से दूसरी उक्ति निकलती है कि "मेरे द्वारा मेरी इच्छा के विरुद्ध किया गया कार्य, मेरा नहीं है।" तात्पर्य है कि किसी कार्य को दण्डनीय होने के लिए इच्छित होना आवश्यक है। अतः अपराध गठित होने के लिए आशय और कार्य का संगामी होना आवश्यक है। परन्तु ऐसे मामलों में जहां कृत्य, दोषकर्ता के आशय के बिना भी विवक्षित या स्पष्ट रूप से दण्डनीय बनाया गया हो, वहां कृत्य स्वयंमेव दण्डनीय होगा। कठोर दायित्व के मामलों में दुराशय महत्वहीन होता है, जैसे-राजद्रोह आदि।

- 3- **अपराधिक कृत्य:**— किसी अपराध के लिए व्यक्ति का मात्र दुराशय पर्याप्त नहीं है बल्कि दण्डनीय होने के लिए आशय को स्वेच्छापूर्ण कार्य (Voluntary Act) या अवैध लोप (Illigal omission) के रूप में स्पष्ट होना चाहिए। तात्पर्य है कि व्यक्ति का कार्य स्वेच्छिक होना चाहिए। यदि विधि द्वारा किसी व्यक्ति पर कोई दायित्व सौंपा गया है तो उस दायित्व का निर्वहन न करना अवैध लोप है। जैसे अपनी पत्नी व बच्चे को भूख से मरने देता है। उनका भरण पोषण, अ का विधिक दायित्व था, जिसका वह अवैध लोप करता है। अतः अ, पत्नी व बच्चे की मृत्यु हेतु दायी हैं।
- 4- **कृत्य की सम्पूर्णता अर्थात् मानव को क्षति:** अपराध का चौथा तत्व है—कृत्य की सम्पूर्णता अर्थात् मानव को क्षति। अर्थात् दुराशयपूर्ण अपराधिक कृत्य से अन्य व्यक्ति या समाज को क्षति पहुंचने पर अपराध गठित होता है। अतः उपरोक्त 4 तत्वों से अपराध की संरचना होती है। परन्तु इसके कुछ अपवाद हैं:—

➤ **अपवाद:**—

- 1- कभी-2 दुराशय के अभाव में भी अपराध सृजित होता है। जैसे कठोर दायित्व (Strict Liability) के मामले जैसे राजद्रोह आदि।
- 2- कुछ मामलों में आपराधिक कृत्य के पूर्ण हुए बिना अपराध सृजित होता है। ऐसे मामले अपूर्ण अपराध (Inchoate Crime) के मामले हैं। जैसे—प्रयत्न, दुष्प्रेरण, षडयंत्र आदि।
- 3- कुछ विशिष्ट मामलों में न तो आपराधिक कृत्य होता है और न किसी को क्षति। परन्तु राज्य गम्भीर मामलों में, घटना घटित होने से पूर्व ही निवारक कदम उठाकर अपराध को नियंत्रित करता है। निरोधक कार्यवाही (Preventive steps) के तहत इन्हें अपराध घोषित किया गया है।

जैसे—डकैती डालने की तैयारी करना, डकैती डालने के उद्देश्य से इकट्ठा होना आदि।

➤ अपराध विधि का व्यावहारिक दृष्टिकोण—

प्रसिद्ध विधिशास्त्री पैट्रिक डेवलिन, अपनी पुस्तक— “The Enforcement of Morals” में कहते हैं कि— “व्यवहारिक रूप से कुछ नैतिक सिद्धान्त, जिन्हें समाज अनुपालित कराना चाहता हो तथा जिनका उल्लंघन न केवल क्षतिग्रस्त व्यक्ति, बल्कि पूरे समाज के लिए आपराधिक हो, अपराध विधि का आधार है।

सैद्धान्तिक रूप से कोई अपराध, जो किसी व्यक्ति विशेष के लिए अपराध है, वह सम्पूर्ण समाज के लिए एक भय है। इंग्लैण्ड की “बुल्फेन्डेन कमेटी की रिपोर्ट (1956)” अपराध विधि के व्यवहारिक और शिष्टाचार को सुरक्षित रखना। (2) नागरिकों को हानिकारण कृत्यों से बचाना तथा (3) शोषण और भ्रष्टाचार के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करना है।

अतः पैट्रिक डेवलिन के अनुसार— “किसी व्यक्ति द्वारा वैयक्तिक रूप से किया गया कार्य, तब तक विधि की विषयवस्तु नहीं बनेगा, जब तक ये साबित न कर दिया जाए कि उसके द्वारा किया गया कार्य लोकहित के इतना विरुद्ध है कि लोकहित के अभिभावक के रूप में विधि को उसके कार्यों में हस्तक्षेप करना चाहिए।”

इस प्रकार विधि समाज की सुरक्षा के लिए आस्तित्ववान है। ये अपना कार्य व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान कर ही नहीं बल्कि राजनैतिक आदर्शों, नैतिकता व संस्थाओं की सुरक्षा करके भी करती है। इस कार्य के लिए अपराध विधि का सैद्धान्तिक नहीं बल्कि व्यवहारिक निर्वचन किया जाता है। यही अपराध के प्रति आधुनिक व्यवहारिक दृष्टिकोण है।

प्र0.2 अपराध करने की कौन-सी अवस्थाएँ हैं? तैयारी व प्रयत्न कब दण्डनीय होता है? तैयारी व प्रयत्न में अंतर बतायें।

(इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं—तैयारी, प्रयत्न)

Ans- कोई अपराध पूर्ण होने से पहले कई चरणों से होकर गुजरता है। प्रत्येक अपराध को करने की 4 अवस्थाएँ होती हैं।

1- आशय (Intention)

2- तैयारी (Preparation).

3- प्रयत्न (Attempt).

4- अपराध घटित होना (Commission of offence).

1- आशय (Intention) -अपराध की इस प्रथम अवस्था में व्यक्ति के दिमाग में दोषपूर्ण आशय की उत्पत्ति होती है। सामण्ड के अनुसार—जिस लक्ष्य को मन में रखकर कोई कार्य किया जाए, उसे आशय कहते हैं। जब तक आशय कार्यरूप में परिणत नहीं होता, तब तक व्यक्ति दण्डनीय नहीं होगा। अतः आशय की अवस्था दण्डनीय नहीं होती है।

2- तैयारी (Preparation)- अपराध की इस दूसरी अवस्था में व्यक्ति अपने वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, वांछित संसाधनों का प्रबन्ध करता है। सामान्यतः तैयारी की अवस्था दण्डनीय नहीं होती है। परन्तु कुछ अपवादों में तैयारी दण्डनीय होती है, जैसे—भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करने के आशय से आयुध संग्रह करना (धारा-122) भारत के मित्र राष्ट्र की भूमि पर लूटपाट की तैयारी करना (धारा-126), कूटकृत सिक्के या स्टाम्प का निर्माण विक्रय या संग्रह या इसके उपकरण या सामग्री का निर्माण करना विक्रय या संग्रह करना (धारा-233-235, 256, 257), डकैती की तैयारी करना (धारा-399)।

3- प्रयत्न (Attempt)- अपराध की ये तीसरी अवस्था अपराध की दिशा में प्रत्यक्ष रूप से उठाया गया कदम है, जिसमें अपराधी अपने उद्देश्य की प्राप्ति का प्रयास करता है। आवश्यक नहीं है कि वह अपने उद्देश्य में सफल होगा। प्रयत्न साशय होना चाहिए। प्रयत्न सदैव दण्डनीय होता है। धारा-511 प्रयत्न के दण्ड को स्पष्ट करती है। **तुष्टिपाद मंडल वाद (1950)** में कहा गया कि कोई कार्य तैयारी है या प्रयत्नइ स प्रश्न के निर्धारण में ये देखना होगा कि क्या किया गया कार्य मात्र ही अपराध कारित करने में सक्षम है ? यदि अपराध करने की दिशा में कोई कार्य किया जाए और पुनः आगे कुछ किए बिना भी अपराध घटित हो जाए तो वह कार्य प्रयत्न होगा। पर यदि कार्य की प्रकृति ऐसी है कि यदि कर्ता अपना विचार त्याग दे तो कोई हानि न हो तो कोई प्रयत्न नहीं माना जायेगा।

4- अपराध घटित होना (Commission of Offence)- किसी अपराध को करने के आशय, तैयारी तथा प्रयत्न के बाद अपराध की पूर्णता भी आवश्यक है।

➤ **तैयारी व प्रयत्न में अंतर**—तैयारी व प्रयत्न में अंतर लॉर्ड ब्लैकबर्न ने रेग बनाम् चीजमैन (1862) के वाद में किया। अन्तर इस प्रकार है—

- 1- किसी अपराध के किए जाने के लिए साधनों को एकत्र करना तैयारी है। तैयार संसाधनों का स्पष्ट प्रयोग करना प्रयत्न है।
- 2- तैयार करना मात्र, अपवादों को छोड़कर नहीं है। प्रयत्न स्वतंत्र अपराध होने के कारण सदैव दण्डनीय है।
- 3- तैयारी की अवस्था में अपराधी का दुराशय प्रकट नहीं होता। प्रयत्न की अवस्था में दुराशय प्रकट होता है।
- 4- तैयारी की अवस्था में अपराधी को अपराध से विमुख होने का हमेशा अक्सर होता है। प्रयत्न में अपराध से विमुख होने का अवसर समाप्त हो जाता है।

प्र0.3 “प्रत्येक अपराध के लिए दुराशय एक आवश्यक तत्व है।” इस कथन की व्याख्या करें। दुराशय का सिद्धान्त संविधिक अपराधों में कहाँ तक लागू है?

Ans- किसी व्यक्ति की दोषसिद्धि उसके वाह्य कार्यों, जिन्हें विधि निषिद्ध करती हैं, पर ही निर्भर नहीं करती, अपितु उसकी दोषसिद्धि कृत्य को एक निश्चित मनोभाव से करने के कारण होती है। अतः किसी कार्य को अपराध होने के लिए दूषित मन से उसका किया जाना आवश्यक है। अपराध में शामिल ये मानसिक तत्व अपराध का एक अभिन्न अंग है। प्राकृतिक न्याय (Natural Justice) का ये एक मुख्य सिद्धान्त है कि “मात्र कृत्य किसी को दोषी नहीं बनाता, जब तक उसका आशय ऐसा न रहा हो।” इस सिद्धान्त को जस्टिस कोक ने प्रथमतः अपनी पुस्तक “थर्ड इंस्टीट्यूशन” में एक लैटिन सूत्र के रूप में व्यक्त किया— **Actus Non Facit Reum Nisi Mens Sit Rea**, और कहा कि आशय के बिना, केवल कार्य किसी को अपराधी नहीं बनाता। दुराशय का ये तत्व अपराध का अभिन्न अंग है। इसी सूत्र से एक अन्य सूत्र भी निकलता है कि “मेरे द्वारा, मेरी इच्छा के विरुद्ध किया गया कार्य, मेरा नहीं है।” इस प्रकार जहाँ अपराध गठित करने के लिए आपराधिक आशय अनुपस्थित हो, वहाँ अभियुक्त दण्डित नहीं किया जायेगा।

➤ दुराशय का संविधिक अपराधों में लागू होना— किसी अधिनियम में परिभाषित अपराधों में, जहाँ दुराशय को एक तत्व के रूप में स्पष्टतः वर्णित नहीं किया गया है, वहाँ क्या इसे स्वीकार किया जाना चाहिए ? ये प्रश्न अंग्रेजी विधि तथा भारतीय विधि दोनों में विवादित था।

(क) अंग्रेजी विधि में दुराशय का सिद्धान्त— अंग्रेजी विधि में दुराशय के सिद्धान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। एक प्रमुख वाद आरो बनाम् प्रिंस (1875) में अभियुक्त के सद्विश्वास की प्रतिरक्षा स्वीकार नहीं की गई और उसे दोषी माना गया है। जूरी ने निर्णीत किया कि “स्वतः एवं बुरे कृत्य”

(Mala-in-se) में युक्तियुक्त विश्वास की प्रतिरक्षा स्वीकार्य है, परन्तु “विधि निषिद्ध कृत्यों” (Mala-prohibita) में ऐसा विश्वास कोई महत्व नहीं रखता क्योंकि अभियुक्त का कृत्य संविधि द्वारा प्रतिषिद्ध है। जूरी के दृष्टिकोण में, कुछ समय बाद, एक अन्य वाद, आर० बनाम टालसन (1889) में परिवर्तन आ गया। इसमें जूरी ने कहा कि “कृत्य स्वयं किसी मनुष्य को अपराधी नहीं बनाता यदि उसका मन भी अपराधी न हो।” जूरी ने युक्तियुक्त विश्वास की प्रतिरक्षा स्वीकार की। अतः अब अंग्रेजी विधि में दुराशय को अपराध के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

(ख) भारतीय विधि में दुराशय का सिद्धान्त— भारतीय दण्ड संहिता में दुराशय शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है बल्कि विभिन्न शब्दों द्वारा अभियुक्त की मानसिक स्थिति बता दी गई है, जैसे जानबूझकर, बेईमानी से कपटपूर्वक आदि। प्रथमतः महाराष्ट्र राज्य बनाम एम०एच० जार्ज (1965) वाद में कहा गया कि “अधिनियम जब तक स्पष्टतः या विवक्षित रूप से, अपराध के एक तत्व के रूप में, दुराशय को अस्वीकार नहीं कर देता, तब तक इसे स्वीकार करना चाहिए।” उपरोक्त सिद्धान्त को बाद में नाथू लाल बनाम म० प्र० राज्य (1996) वाद में पुनः मान्यता प्रदान की गई।

➤ दुराशय के अपवाद— सामान्यतः दुराशय अपराध के लिए एक आवश्यक तत्व होता है परन्तु कुछ अपवादों में दुराशय आवश्यक नहीं होता। उदाहरण स्वरूप—राजद्रोह, भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करना, विधि की भूल, कठोर दायित्व के मामले आदि।

Q-4 भा.दं.सं. की धारा-34 में संयुक्त अपराधियों के सम्बन्ध में क्या प्रावधान किए गए हैं?

(इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं—सामान्य आशय, संयुक्त दायित्व)

Ans- भा0द0सं0 की धारा 34–38 संयुक्त उत्तरदायित्व (**Joint Liability**) का सिद्धान्त बताती है। धारा-34 के अनुसार कई व्यक्तियों द्वारा संयुक्त रूप से कोई आपराधिक कार्य किया जाता है, सबके सामान्य आशय को अग्रसर करने में, तो इनमें से प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य के लिए उसी प्रकार दायी होता है, जैसे वह कार्य उसने अकेले किया हो। इसे संयुक्त उत्तरदायित्व कहते हैं और अपराध में शामिल सभी व्यक्तियों को संयुक्त अपराधी कहते हैं।

➤ धारा 34 में संयुक्त अपराधियों के दायित्व के आवश्यक तत्व—

- 1— आपराधिक कृत्य— धारा 34 के लिए आवश्यक है कि कोई आपराधिक कार्य किया गया हो, जो विधि में दण्डनीय हो। इस 'कार्य' शब्द में कार्य व लोप दोनों शामिल हैं। अपराध के अन्तर्गत 'कार्यों' की श्रृंखला (**Series of Act**) होनी चाहिए।
- 2— कार्य कई व्यक्तियों द्वारा किया गया हो— धारा-34 संयुक्त उत्तरदायित्व का सृजन करती है। अतः आवश्यक है कि अभियुक्तों की संख्या एक से अधिक हो।
- 3— सामान्य आशय— सामान्य आशय से तात्पर्य है कि जब कोई कार्य पूर्व नियोजित योजना बनाकर तथा उसी योजना के अनुसारेण में किया जाता है, तब कहा जाता है कि कार्य सामान्य आशय के साथ किया गया है। अतः सामान्य आशय के लिए 2 तत्वों का होना आवश्यक है—पूर्वनियोजित योजना तथा मस्तिष्कों का पूर्व मिलन। तात्पर्य है कि अपराधियों में दिमागी मेल हुआ हो और उन्होंने अपराध की योजना बनाई हो अर्थात् उन्हें पूर्व जानकारी हो व उन्होंने पूर्व सहमति दी हो।

4- कार्य सामान्य आशय को अग्रसर करने में किया गया हो—धारा 34 हेतु आवश्यक है कि आपराधिक कार्य सबके सामान्य आशय को अग्रसर करने में किया गया हो। इसके लिए आपराधियों द्वारा पूर्व नियोजित योजना की आवश्यकता पड़ती है और उनके विचारों का समामिलन हुआ हो।

➤ निर्णित वाद—वारीन्द्र कुमार घोष बनाम इम्परर (1925)— वाद में अभियुक्त पर पोस्टमास्टर को लूटने व हत्या का आरोप था। उसके तक था कि घटना के वक्त वह कमरे के बाहर था और उसने गोली नहीं चलाई थी। परन्तु कोर्ट ने उसे दायी ठहराते हुए कहा कि “वे व्यक्ति भी अपराध में सहायक होते हैं जो केवल बाहर खड़े होकर इन्तजार करते हैं या अपराधी को किसी अन्य प्रकार की सेवायें प्रदान करते हैं। “चूंकि कार्य सामान्य आशय को अग्रसर करते में किया गया था, अतः आन्वयिक दायित्व के आधार पर अभियुक्त दायी था।

महबूब शाह बनाम इम्परर (1945)— वाद में न्यायालय ने सामान्य आशय व समान आशय (Common Intention and Similar Intention) में अन्तर करते हुए कहा कि धारा-34 सामान्य आशय के आधार पर दायित्व निर्धारित करती है। सामान्य आशय में पूर्व नियोजित योजना होना आवश्यक है, जबकि समान आशय में पूर्व नियोजित योजना नहीं होती है।

प्र0.5 धारा 149 के अधीन सामूहिक दायित्व की व्याख्या करें। ‘सामान्य आशय’ तथा सामान्य उद्देश्य बतायें।

(इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं—सामूहिक दायित्व, सामान्य उद्देश्य),

Ans.

समूहिक दायित्व का सिद्धान्त भा0द0सं0 की धारा-149 में प्रतिपदित किया गया है। धारा-149 के अनुसार “यदि विधि-विरुद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा

उस जमाव के सदस्य, उस उद्देश्य को अग्रसर करने में सम्भव मानते थे तो हर व्यक्ति, जो अपराध के किये जाने के समय उस जमाव का सदस्य था उस अपराध का दोषी होगा।”

यह धारा समूह दायित्व का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। यह भी कहा जाता है कि यह धारा संयुक्त या प्रतिनिधिक या आन्वयिक आपराधिक दायित्व का सिद्धान्त प्रतिपादित करती है। इसके अनुसार यदि विधि विरुद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा उस जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में अपराध किया जाता है या कोई ऐसा अपराध किया जाता है जिसका किया जाना उस जमाव के सदस्य सम्भाव्य जानते थे, तो हर व्यक्ति, जो उस अपराध के किये जाने के समय उस जमाव का सदस्य था, उस अपराध का दोषी होगा। दूसरे शब्दों में, इस धारा के अन्तर्गत दो प्रकार के मामले आते हैं—प्रथम भाग विधि—विरुद्ध जमाव के हर सदस्य को उस अपराध के लिए दोषसिद्ध करता है, जो किसी सदस्य ने उस जमाव के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में किया हो। द्वितीय भाग में उस जमाव का हर सदस्य उस अपराध को कारित किये जाने के लिए दोष सिद्ध किया जायेगा जिसके किये जाने की सम्भावना उस जमाव के सदस्य जानते थे। इस धारा के अधीन आन्वयिक दायित्व का आधार विधि—विरुद्ध जमाव की सदस्यता है।

➤ धारा 149 के आवश्यक तत्व—

1— पाँच या अधिक व्यक्ति—

धारा—149 के लिए यह आवश्यक है कि जिन व्यक्तियों को इस धारा के अधीन दांयी ठहराया जा रहा है। विधि—विरुद्ध जमाव के सदस्य है। विधि—विरुद्ध जमाव के लिए पाँच या अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है। पाँच से कम व्यक्तियों का जमाव विधि—विरुद्ध जमाव नीं माना जायेगा। यदि पाँच या पाँच से अधिक व्यक्ति पर आरोप लगाया जाये तथा उनमें से कुछ को न्यायालय द्वारा

दोषमुक्त कर दिया जाये, फिर शेष बने अभियुक्तों की संख्या यदि पांच से कम रह जाती है तो उन्हें धारा-149 में दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

2- सामान्य उद्देश्य-

विधि-विरुद्ध जमाव के सदस्यों द्वारा सामान्य उद्देश्य से एकत्र होना आवश्यक है परन्तु सामान्य उद्देश्य के लिए यह नहीं आवश्यक है कि सभी व्यक्तियों में पहले आपस में सलाह मशवरा किया हो या योजना बनाई हो। धारा-149 के प्रयोजन के लिए सभी व्यक्तियों का तब सामान्य उद्देश्य समझ लिया जायेगा, जब जमाव के सभी सदस्यों को विधि-विरुद्ध उद्देश्य की जानकारी हो तथा वे उससे सहमत हो गये हों।

3- विधि-विरुद्ध उद्देश्य-

धारा 149 के लागू होने के लिए विधि-विरुद्ध जमाव का अस्तित्व में होना आवश्यक है। विधि-विरुद्ध जमाव की परिभाषा धारा 141 में दी गई है, जिससे स्पष्ट है कि व्यक्तियों का केवल वही जमाव विधि-विरुद्ध माना जायेगा जो धारा 141 में गिनाये गये उद्देश्यों से एकत्र हो।

4- अपराध कार्य किया जाये-

धारा 149 उसी समय लागू होती है जिस समय विधि-विरुद्ध जमाव के सदस्यों द्वारा अपराध कार्य किया जाये। यह धारा मात्र विधि-विरुद्ध जमाव को दण्डनीय नहीं बनाती बल्कि उसके आगे की स्थिति को दण्डनीय बनाती है अर्थात् जमाव द्वारा अपराध का वास्तविक निष्पादन किया जाये।

5- सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में कार्य किया जाये-

धारा 149 उन सभी व्यक्तियों को समान रूप से दायी बनाती है जो सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में कोई अपराध करते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जमाव के प्रत्येक सदस्य द्वारा अतिरिक्त कार्य किया जाये। इसके लिए मात्र

इतना पर्याप्त है कि विधि-विरुद्ध जमाव के प्रत्येक सदस्य ने सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में हिस्सा लिया हो।

6- अपराध किये जाने की सम्भावना का ज्ञान हो-

धारा 149 दो परिस्थितियों में व्यक्ति को दायी ठहराती है-प्रथम यदि अपराध कार्य सबके सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में किया जाता है तथा दूसरा यदि सबका सामान्य उद्देश्य भिन्न कार्य करने का था, लेकिन उस कार्य के किये जाने की सम्भावना का ज्ञान जमाव के सदस्यों को था, तो भी वे समान रूप से दायी होंगे।

➤ सामान्य किये जाने की सम्भावना का ज्ञान हो-

सामान्य आशय (धारा-34)	सामान्य उद्देश्य (धारा-149)
1- धारा-34 में दायित्व का आधार सामान्य आशय है, जो अभियुक्तों को प्रेरित करता है। अर्थात् एवं निर्धारित योजना तथा दिमागों का पूर्व मिलन होना चाहिए।	1- धारा-149 में दायित्व का आधार सामान्य उद्देश्य है।
2- सामान्य आशय में असीमित अपराध आते हैं।	2- सामान्य उद्देश्य, धारा 141 में वर्णित पाँच अवैध उद्देश्यों तक सीमित है।
3- धारा-34 के प्रवर्तन के लिए अपराध कारित करने में तथा सामान्य आशय में सक्रिय सहयोग आवश्यक है।	3- धारा-149 के प्रवर्तन के लिए अपराध घटित होते समय अवैध सभा का सदस्य होना ही पर्याप्त है।
4- सामान्य आशय में कम से कम दो व्यक्ति आवश्यक है।	4- सामान्य उद्देश्य के प्रवर्तन के लिए कम से कम पांच व्यक्ति आवश्यक है।
5- धारा-34, संयुक्त दायित्व (Joint Liability) के सिद्धान्त को बताती है, परन्तु कोई विशिष्ट अपराध सृजित नहीं करती। यह केवल निर्वचनात्मक प्रकृति (Interpretative character) की है।	5- धारा-149, सामूहिक दायित्व (Group Liability) का सिद्धान्त बताती है और पृथक अपराध सृजित करती है।

विधिविरुद्ध जमाव (Unlawful Assembly)-

विधि विरुद्ध जमाव से संबंधित प्रावधान भारतीय दण्ड संहिता की धारा 141, 142, 143 में वर्णित है। धारा 141 का उद्देश्य पांच या अधिक व्यक्तियों द्वारा इसमें वर्णित किसी एक कार्य को करने के लिए अपराधिक बल के प्रयोग को रोकना है। व्यक्तियों का जमाव जब अवैध प्रयोजन हेतु हो तो वह दण्डनीय होता है। धारा 141 के अनुसार पांच या अधिक व्यक्तियों का जमाव विधि विरुद्ध कहा जाता है यदि उन व्यक्तियों का जिनसे वह जमाव गठित हुआ है, सामान्य उद्देश्य—

- 1— केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को या राज्य विधानमण्डल को या किसी लोक सेवक को, जबकि वह ऐसे लोकसेवक की विधिपूर्ण शक्ति का प्रयोग कर रहा हो, अपराधिक बल द्वारा या अपराधिक बल के प्रदर्शन द्वारा आतंकित करना अथवा
- 2— किसी विधि के या किसी वैध आदेशिका का निष्पाद्य का प्रतिरोध करना अथवा
- 3— किसी रिश्ति या अपराधिक अतिचार या अन्य अपराध का करना अथवा
- 4— अपराधिक बल या उसके प्रदर्शन द्वारा किसी सम्पत्ति का कब्जा लेना या अभिप्राप्त करना या किसी व्यक्ति को किसी मार्ग के अधिकार के उपयोग में या जल के उपयोग के अधिकार या अन्य अमूर्त अधिकार से या उपभोग से वंचित करना या किसी अधिकार या अनुमानित अधिकार को प्रदर्शित करना अथवा अपराधिक बल या उसके प्रदर्शन द्वारा किसी व्यक्ति को वह करने के लिए, जिसे करने हेतु वह वैध रूप से आबद्ध न हो या उसका लोप करने का वैध रूप से हकदार हो, विवश करना।

विधि विरुद्ध जमाव गठित करने हेतु 5 या 5 से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि वे दूसरे के सामान्य उद्देश्य से भी भागीदार हों। सामान्य उद्देश्य का निर्मित होना ही विधि विरुद्ध जमाव का सार है। किसी विधि विरुद्ध जमाव में उपस्थित मात्र ही किसी व्यक्ति को

विधि विरुद्ध जमाव का सदस्य नहीं बना देती जब तक यह न साबित हो जाये कि उसने कुछ किया या करने से लोकप किया जो उसे विधि विरुद्ध जमाव का सदस्य बना देता है या यह जानते हुए कि जमाव विधि विरुद्ध है वह साशय उस जमाव का सदस्य बनता है।

मोतीदास के वाद में उच्चतम न्यायालय ने इस मत की पुष्टि किया था कि एक जमाव जो प्रारम्भ में विधि के अनुकूल था, अपने सदस्यों के पश्चातवर्ती कार्य के द्वारा ही विधि विरुद्ध जमाव में परिवर्तित हो सकता था तथा यह भी आवश्यक नहीं है कि जमाव के सभी सदस्य उस कार्य के लिए सहमत रहे हो परन्तु यह आवश्यक है कि जमाव के अन्य सदस्य उसके प्रति अपनी सम्मति दे चुके हों।

धारा 142 के अनुसार यदि कोई व्यक्ति यह जानने के बावजूद कि जमाव विधि विरुद्ध था, विधि विरुद्ध जमाव में बना रहता है तो यह समझा जायेगा कि वह विधिविरुद्ध जमाव का सदस्य था और उस रूप में दण्डनीय होगा। “बना रहता है” शब्द का अर्थ है कि यह जानते हुए कि जमाव विधि विरुद्ध प्रकृति का है, शारीरिक रूप से विद्यमान रहता है। विधि विरुद्ध जमाव के सदस्य होने के दण्ड का विवरण धारा 143 में हैं जिसके अनुसार जो कोई विधि विरुद्ध जमाव का सदस्य होगा वह दोनों भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि 6 माह तक की हो सकेगी या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जायेगा।

प्र0.6 बल्वा एवं दंगा को परिभाषित करें और बल्वा तथा दंगा में अन्तर बताइये?

बल्वा करना (धारा—146, 147)—

भारतीय दण्ड संहिता की धारा—146 में बल्वा परिभाषित है। बल्वा कार्य कलाप के एक विशिष्ट स्थिति में मात्र एक विधि विरुद्ध जमाव है। वह कार्य

कलाप बल प्रयोग या हिंसा से युक्त रहता है। बल का प्रयोग ही बल्वा को विधि विरुद्ध जमाव से अलग रखता है। बल्वा के अपराध के निम्न आवश्यक तत्व है—

- 1— अभियुक्तों की संख्या पांच या उससे अधिक होनी चाहिए तथा वचे विधि विरुद्ध जमाव निर्मित करते हों।
- 2— अभियुक्तों का एक ही सामान्य उद्देश्य से प्रेरित होना आवश्यक है।
- 3— विधि विरुद्ध जमाव द्वारा अथवा उसके किसी एक सदस्य द्वारा सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में बल या हिंसा का प्रयोग होना चाहिए।

एकत्रित व्यक्तियों द्वारा मात्र बल का प्रयोग उनमें से सभी को बल्वा करने हेतु दायी नहीं बना देता है। इस अपराध का आवश्यक तत्व है सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति हेतु बल प्रयोग करना। यदि जमाव का सामान्य उद्देश्य अवैध नहीं है तो यह बल्वा करना नहीं है भले ही उस जमाव के किसी सदस्य द्वारा बल प्रयोग हुआ हो।

बल अथवा हिंसा प्रयोग—

बल्वा से 'बल' शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में हुआ है जिस प्रकार धारा 349 में बल शब्द परिभाषित है। हिंसा केवल व्यक्तियों के विरुद्ध बल प्रयोग तक ही सीमित नहीं है बल्कि निर्जीव वस्तुओं के विरुद्ध बल प्रयोग तक विस्तारित है। हिंसा बल से विस्तृत है क्योंकि इसमें सम्पत्ति एवं अन्य निर्जीव वस्तुओं के विरुद्ध बल प्रयोग भी सम्मिलित है।

यदि बहुत से व्यक्ति किसी वैध उद्देश्य से इकट्ठे हुए हैं और बिना किसी पूर्व आशय के एकाएक झगड़ने लगते हैं तो वे बल्वा हेतु दण्डित नहीं होंगे। दर्शक, यात्री इत्यादि। जो बल्वा स्थल पर उत्सुकता दर्श आकर्षित होते हैं, मात्र अपनी उपस्थिति के कारण विधि विरुद्ध जमाव के सदस्य या बल्वाकारी नहीं माने जाने चाहिए।

रघनाथ राय 1962 के वाद में अनेक हिन्दू, जो एक सामान्य मतानुसार कार्य कर रहे थे, एक मुसलमान के कब्जे से एक बैल तथा दो गायें बलपूर्वक हटा ले गये। उन लोगों का प्रयोजन इस कार्य के पीछे न तो स्वयं को सदोष अभिलाभ पहुंचाना था और न ही जानवरों के मालिक को 'सदोष हानि' पहुंचाना था बल्कि उनका आशय गायों के हत्या से बचाना था। उन लोगों को बल्वा करने के अपराध का दोषी घोषित किया गया।

बल्वा के लिए दण्ड—धारा—147—

जो कोई बल्वा करने का दोषी होगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से, दण्डित किया जा सकेगा।

दंगा—

'दंगा' शब्द फ्रेंच भाषा के **Affraier** शब्द से बना है जिसका अर्थ है, आतंकित करना। इसका तत्व है—जनता को आतंकित करना। इस अपराध के निम्नलिखित अवयव हैं—

- 1— दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच की लड़ाई।
- 2— लड़ाई किसी सार्वजनिक स्थान में हो,
- 3— उनकी लड़ाई से लोक शांति को व्यवधान पहुंचे।

सार्वजनिक स्थान वह स्थान है जहां जनता जाती है, यह महत्वपूर्ण नहीं है कि उसे वहीं जाने का अधिकार है या नहीं।

दंगा एवं बल्वा में अन्तर—

- 1— दंगा एक सार्वजनिक स्थान में किया जा सकता है जबकि बल्वा किसी भी स्थान में हो सकता है।
- 2— दंगा दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है जबकि बल्वा के लिए कम से कम पांच व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

3— बलवाकारी वे व्यक्ति होते हैं जो सर्वप्रथम विधि विरुद्ध जमाव गठित करते हैं, किसी दंगा करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक नहीं है।

प्र0.7 विकृतचित्त व्यक्तियों द्वारा किये गये कार्य के लिए आपराधिक दायित्व से मुक्ति प्रदान करने के लिए क्या-क्या शर्तें अपेक्षित हैं?

(इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं—विकृतचित्ता, मैकनॉटन नियम, विधिक एवं चिकित्सीय विकृतचित्तता)

उ0. आपराधिक विधि का सिद्धान्त है कि किसी व्यक्ति को विधि के अन्तर्गत आपराधिक उत्तरदायित्व प्रदान करने के लिए सिद्ध किया जाना आवश्यक है कि अपराध कार्य करते समय वह व्यक्ति मानसिक रूप से इतना सक्षम था कि दुराशय निर्मित कर सके। मानसिक अस्वस्थता या विकृतचित्ता, आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति का एक अच्छा बचाव है भाद0सं0 की धारा 84 से इस अपवाद को प्रस्तुत करती है जिसमें विकृतचित्त व्यक्ति द्वारा की गई बात अपराध नहीं होती है। भा0दं0सं0 की धारा 84 के अनुसार—“ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया कोई कार्य अपराध नहीं है जो उसे करते समय विकृत चित्ता के कारण उस कार्य की प्रकृति या यह कि वह जो कुछ कर रहा है वह दोषपूर्ण या विधिविरुद्ध है, जानने में असमर्थ है”।

➤ **धारा 84 के आवश्यक तत्व:—**

1. **विकृतचित्तता—** धारा 84 के अन्तर्गत चित्तविकृति मस्तिष्क की वह स्थिति है जिसमें मस्तिष्क के किसी रोग अथवा विकृति के कारण अनुभव, जानकारी, मनोविचार व इच्छा या तो कार्य ही नहीं करते हों या अस्वाभाविक ढंग से कार्य करते हों।
2. **कार्य करने के समय विकृतचित्त हो—** धारा 84 के लागू होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपराध कार्य करने के समय विकृतचित्त हो। पहले अथवा बाद की विकृतचित्तता बचाव के आधार नहीं हो सकती। अपराध कार्य

किये जाने के समय व्यक्ति की मानसिक दशा कैसी थी, ये सिद्ध करने का भार, कि अभियुक्त कार्य करते समय विकृतचित्त था, अभियुक्त पर है।

3. कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थता— किसी व्यक्ति के विकृतचित्त होने के लिए ये आवश्यक है कि उसकी विकृतचित्ता ऐसी थी जिसके कारण वह अपने कार्य की प्रकृति को जानने में असमर्थ था। उदाहरण स्वरूप—सर जेम्स स्टीफेन उदाहरण देते हैं कि एक जड़मूर्ख किसी का सर धड़ से अलग कर देता है कि जागने पर वह व्यक्ति अपना सर खोजेगा। इस मामले में वह व्यक्ति अपने कार्य की प्रकृति व परिणाम को नहीं समझता था, अतः उसे धारा 84 का बचाव मिलेगा।

4. यह समझने में असमर्थता कि कार्य दोषपूर्ण अथवा विधि के प्रतिकूल है—

दण्ड संहिता की धारा 84 में उपबन्धित विकृतचित्तता को निर्धारित करने की एक कसौटी यह है कि वह अपने कार्य की प्रकृति को समझने में असमर्थ था तथा दूसरी कसौटी यह है कि वह यह नहीं जानता था कि जो कुछ कर रहा है वह दोषपूर्ण अथवा विधिविरुद्ध है। यदि कोई व्यक्ति किसी विशिष्ट विभ्रम से ग्रस्त है और अन्य मामलों में उसकी मति ठीक है तो उसे विकृतचित्ता का बचाव नहीं मिलेगा।

मैकनाटन का मामला (1843)

इस मामले में अभियुक्त मैकनाटन स्काटलैण्ड का निवासी था, जो कई वर्षों से 'उत्पीड़न उन्माद से पीड़ित था। मैकनाटन की यह धारणा थी कुछ व्यक्तियों का दल उसका पीछा करता है और उसकी निंदा करता है तथा उसे मिलने वाली नौकरियों में बाधा उत्पन्न करता है। मैकनाटन इस सब दुर्भाग्य का कारण इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री श्री रोबर्ट पोल को मानता था। एक बार उसने भी ड्रमोन्ड नाम व्यक्ति को रोबर्टपोल समझते हुए गोली मारी, जो कि राबर्टपोल का निजी सचिव था। जूरी ने अभियुक्त को उन्मत्ता के आधार पर दोषमुक्त घोषित कर दिया।

फलस्वरूप सम्पूर्ण इंग्लैण्ड में खलबली मच गई। अतः मामले को हॉउस ऑफ लॉर्ड्स के समक्ष भेजा गया। हॉउस ऑफ लॉर्ड्स ने मामले को निर्धारित करते हुए पाँच सिद्धान्त प्रतिपादित किये जो कि मैकनाटन नियम कहलाते हैं। यह नियम इस प्रकार है:—

- 1— जब तक इसके विपरीत साबित न कर दिया जाये तब तक विधि यह उपधारणा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थचित्त है तथा अपने द्वारा किये गये कार्य के परिणाम व प्रकृति को समझने की शक्ति रखता है।
- 2— पागलपन के आधार पर बचाव का तर्क प्रस्तुत करते समय यह साबित करना आवश्यक है कि अपराधिक कार्य करते समय अभियुक्त मानसिक विकृतचित्ता के कारण अपने द्वारा किये गये कार्य की प्रकृति को नहीं जानता था।
- 3— यदि अभियुक्त जानता था कि वह विधि-विरुद्ध कार्य कर रहा है तो फिर चो उसने विकृतचित्तता के कारण ही क्यों न किया जो उसे उत्तरदायी ठहराया जायेगा।
- 4— ऐसे डॉक्टर को, जिसने विचारण से पूर्व अभियुक्त को न देखा हो उसकी राय नहीं ली जा सकती है कि कक्षा अभियुक्त विधिक विकृतचित्त है।
- 5— यदि अपराध कार्य किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया गया है जो परिवर्ती तथ्यों के किसी भ्रम से प्रभावित है और जो उसके कार्यों की प्रकृति छिपा लेती है तो उसके लिए उस स्तर तक उत्तरदायी होगा जिस पर स्तर तक वह तथ्यों के आधार पर उन्हें सोचता है।

➤ विधिक विकृतचित्ता तथा चिकित्सीय विकृतचित्ता:—

विधिक दृष्टिकोण से हर व्यक्ति तब तक स्वस्थचित्त होता है जब तक ठीक व गलत में अंतर स्थापित करने में समर्थ होता है। परन्तु चिकित्सीय दृष्टिकोण से संभवतः हर व्यक्ति अपराध करते समय विकृतचित्त होता है। धारा 84 विधिक

विकृतचित्ता की दशा में बचाव प्रदान करती है। विधिक व चिकित्सीय विकृतचित्ता में अंतर इस प्रकार है—

- 1— विधिक विकृतचित्तता ऐसे तथ्यों पर आधारित होती है जिसे न्यायालय में सिद्ध किया जाना आवश्यक है, ताकि अभियुक्त को दोषमुक्त किया जा सके। जबकि चिकित्सीय विकृतचित्तता पूर्णतः चिकित्सीय आधारों पर निर्भर करती है।
- 2— विधिक विकृतचित्तता स्वयंमेव बचाव का आधार होती है जबकि चिकित्सीय विकृतचित्तता स्वयंमेव बचाव का आधार नहीं होती।
- 3— विधिक विकृतचित्तता सिद्ध करने के लिए धारा 84 के आवश्यक तत्वों को सिद्ध करना आवश्यक है। जबकि चिकित्सीय विकृतचित्तता की सिद्धि डॉक्टरों की साक्ष्य पर आधारित होती है।

अतः यदि धारा 84 के तत्वों के द्वारा अभियुक्त बचाव में विधिक पागलपन सिद्ध नहीं कर पाता है तो वह स्वस्थचित्त माना जायेगा, भले ही वह डॉक्टरों के आधार पर विकृतचित्त था।

प्र0.8 “प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार बदला लेने के लिए नहीं होता वरन् वह केवल आने वाले खतरे से बचने के लिए होता है।” टिप्पणी करें तथा बतायें कि शरीर की प्रतिरक्षा के लिए कब आक्रमणकारी की मृत्यु कारित की जा सकती है? (इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं—प्राइवेट प्रतिरक्षा)

उ0.

➤ व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का अधिकार:—

व्यक्तिगत प्रतिरक्षा से तात्पर्य स्वयं की रक्षा करना है। प्रकृति क्षतिग्रस्त व्यक्ति को प्रोत्साहित करती है कि वह विरोध करे और उस सीमा तक बल का प्रयोग करे जहां तक कि अपराध की पुनरावृत्ति को रोका जा सके। इस प्रकार व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का अधिकार वह अधिकार है जो कि किसी व्यक्ति

पर प्रयुक्त हुए बल को रोकने के लिए आवश्यक हो, प्रयोग में लाया जा सकता है। यह अधिकार उस स्थिति में उत्पन्न होता है जब व्यक्ति के सामने दो विकल्प रह जाते हैं कि या तो वह आक्रमण करने वाले के सामने समर्पण कर दें या अपना बचाव स्वयं करें।

विधि यह मान्यता देती है कि वह अपना बचाव करे। इसी बचाव के अधिकार को व्यक्तिगत प्रतिरक्षा या किसी सुरक्षा का अधिकार कहते हैं। यह अधिकार दो प्रकार का होता है—

- 1— शारीरिक प्रतिरक्षा का अधिकार
- 2— सम्पत्ति की प्रतिरक्षा का अधिकार

➤ व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का अधिकार तथा आपराधिक दायित्व:—

वैध व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार के तहत किया गया कोई भी कार्य अपराध की परिभाषा में नहीं आता है अर्थात् ऐसा कार्य अपराध नहीं माना जा सकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 96 में उल्लेखित किया गया है कि कोई बात अपराध नहीं है जो व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार में प्रयोग की जाती है।

भा0दं0सं0 की धारा 97 के अनुसार “प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह मानव शरीर पर प्रभाव डालने वाले किसी अपराध के विरुद्ध अपने शरीर या किसी अन्य के शरीर की प्रतिरक्षा करे।” यह अधिकार दण्ड संहिता के अन्तर्गत मानव—शरीर पर प्रभाव डालने वाले अपराधों के विरुद्ध ही प्राप्त है। प्रतिरक्षा का अधिकार अपराध किये जाने की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न होने पर ही प्राप्त हो सकता है। इतना ही नहीं, प्रतिरक्षा के अधिकार की मांग करने वाला व्यक्ति स्वयं हमलावर नहीं होना चाहिए। प्रतिरक्षा का अधिकार न केवल अपनी वरन् किसी अन्य व्यक्ति की शारीरिक रक्षा करने का भी अधिकार प्रदान करता है। इस विषय पर अंग्रेजी—विधि की अपेक्षा भारतीय—विधि अधिक विस्तृत है। अंग्रेजी विधि के अन्तर्गत अन्य व्यक्ति की प्रतिरक्षा केवल उसी समय की जा सकती है जब वह अन्य व्यक्ति उसका निकट सम्बन्धी हो। परन्तु भारतीय विधि में इस प्रकार का

कोई प्रतिबन्ध नहीं है। किसी अनजान अजनबी के शरीर की प्रतिरक्षा करना विधि द्वारा सुरक्षित बना दिया गया है। जैसे—अ, के पिता जब उसकी माँ का गला काटने की कोशिश कर रहे थे, तब अ, ने गोली चलाकर उनको मार दिया। इस उदाहरण में अ, अपनी माँ के प्राणों की रक्षा कर रहा है। अतः उसे प्राइबेट प्रतिरक्षा का अधिकार उपलब्ध होगा।

व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का अधिकार समस्त विश्व के विरुद्ध है। धारा 98 यह प्रावधान करती है कि कोई कार्य जो अन्यथा अपराध होता उस कार्य को करने वाले व्यक्ति के बालकपन, समझ की परिपक्वता के अभाव, चित्तविकृति या मत्तता के कारा, या उस व्यक्ति के किसी भ्रम के कारण अपराध नहीं है, तब हर व्यक्ति उस कार्य के विरुद्ध व्यक्तिगत प्रतिरक्षा का वही अधिकार रखता है, जो उस कार्य के वैसा अपराध होने की दशा में रखता।

➤ प्रतिरक्षा के अधिकार के अपवाद अथवा सीमाएं (धारा 99)

1— लोक सेवक के कार्य— धारा 99 उन कार्यों के विपरीत प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग की अनुमति प्रदान नहीं करती जो किसी लोकसेवक द्वारा अपने पद की हैसियत से सद्भावनापूर्वक किये जाते हैं। इस अपवाद के लिए निम्न शर्तें पूरी होनी चाहिए।

क— कार्य करने वाला व्यक्ति लोक सेवक हो,

ख— लोकसेवक द्वारा कार्य सद्भावनापूर्वक किया गया हो,

ग— लोकसेवक के उस कार्य सद्भावनापूर्वक किया गया हो,

2— लोकसेवक के निर्देश से किये गये कार्य— धारा 99 का दूसरा उपखण्ड लोकसेवक के निर्देश से किये जाने वाले कार्यों को प्रतिरक्षा के अधिकार की परिधि से बाहर रखता है। इस खण्ड के लिए निम्नलिखित शर्तों का पूरा होता आवश्यक है:—

1— लोकसेवक के निर्देश से कार्य किया जा रहा हो,

- 2- लोकसेवक के निर्देश से कार्य करने वाला व्यक्ति सद्भावनापूर्वक वह कार्य करे,
- 3- लोकसेवक के उक्त निर्देश से किये जाने वाले कार्य से मृत्यु अथवा गम्भीर चोट की युक्तियुक्त आशंका न उत्पन्न हुई हो।
- 3- **लोक अधिकारियों की सहायता**—धारा 99 का तीसरा उपखण्ड उन मामलों में प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करने की सीमा निर्धारित करता है जिनमें व्यक्ति के पास अधिकारियों की सहायता लेने का समय हो। अर्थात् यदि उसके पास लोक अधिकारियों की सहायता प्राप्त करने का समय व अवसर हो तो उसे प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं होगा।
- 4- **अधिक क्षति**— व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार का बचाव वहां भी प्राप्त नहीं होगा जहां खतरे से अधिक शक्ति का प्रयोग किया गया हो।
- **शरीर के व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में कब मृत्यु तक की जा सकती है? —**
- भा0दं0सं0 की धारा 100 के अनुसार व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करने वाला व्यक्ति हमलावर की मृत्यु तक कर सकता है, यदि वह अपराध जिसके कारण उस अधिकार के प्रयोग का अवसर आता है, एतस्मिन् प्रगणित भांतियों में से किसी भी भांति का है अर्थात्—
- 1- ऐसा हमला जिससे युक्तियुक्त रूप से यह आशंका हो कि उस हमले का परिणाम मृत्यु होगा।
 - 2- ऐसा हमला जिससे युक्तियुक्त रूप से यह आशंका हो कि ऐसे हमले का परिणाम गम्भीर चोट होगा।
 - 3- बलात्कार करने के आशय से किया गया हमला।
 - 4- अप्राकृतिक अपराध करने के आशय से किया गया हमला।
 - 5- व्यपहरण या अपहरण करने के आशय से किया गया हमला।

6- इस आशय से किया गया हमला कि किसी व्यक्ति का ऐसी परिस्थितियों में संदोष परिरोध किया जाये जिससे उसे युक्तियुक्त रूप से यह आशंका हो कि वह अपने छुड़वाने के लिए अधिकारियों की सहायता प्राप्त नहीं कर सकेगा।

7- तेजाब फेंकने या सेवन कराने कार्य या तेजाब फेंकने या सेवन कराने का प्रयत्न जो युक्तियुक्त रूप से यह आशंका उत्पन्न कर सकेगा कि घोर आपत्ति अन्यथा ऐसे कार्य का परिणाम होगी।

➤ मृत्यु से भिन्न अन्य हानि— धारा 101 के अनुसार — यदि हमलावर द्वारा किया जाने वाला अपराध, धारा 100 में उपबन्धित प्रकार का नहीं है तो प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करने वाला हमलावर की मृत्यु के अलावा अन्य किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचा सकता है। परन्तु वह क्षति धारा 99 द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के अधीन होगी।

➤ शरीर की प्रतिरक्षा के अधिकार का आरम्भ न बना रहना—

धारा 102 के प्रावधानों के अनुसार शरीर के प्रतिरक्षा का अधिकार उसी क्षण आरम्भ हो जाता है जब अपराध करने के प्रयत्न या धमकी से शरीर के संकट की युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न होती है चाहे वह अपराध किया न गया हो और तब तक बना रहता है जब तक शरीर के संकट की ऐसी आशंका बनी रहती है। (संशोधन अधि० 2013 के अन्तर्गत स्थापित)

➤ घातक हमले की दशा में शरीर प्रतिरक्षा—

धारा 106 के अनुसार—जिस घातक हमले से मृत्यु की युक्तियुक्त आशंका होती है उसमें प्राइवेट प्रतिरक्षा के प्रयोग में यदि प्रतिरक्षक ऐसी स्थिति में हो कि निर्दोष व्यक्ति की अपहानि के जोखिम के बिना वह इस अधिकार का प्रयोग न कर सके तो प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार के प्रयोग में ऐसी जोखिम उठायी जा सकती

है। अतः धारा 106 के तहत शरीर की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग घातक हमले के विरुद्ध भी किया जा सकता है।

प्र0.9 सम्पत्ति की रक्षा के लिए प्रतिरक्षा के अधिकार की व्याख्या करें। क्या सम्पत्ति की प्रतिरक्षा में हमलावर की मृत्यु तक की जा सकती है? प्रतिरक्षा का अधिकार कब तक बना रहता है?

उ0.

➤ सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार:-

धारा 97 के अनुसार-प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे कार्य के विरुद्ध - जो चोरी, लूट, रिष्टि या आपराधिक अतिचार की परिभाषा में आने वाला अपराध है या ऐसे अपराध का प्रयत्न है, अपनी या किसी अन्य व्यक्ति की, चाहे वह चल हो या अचल सम्पत्ति, की रक्षा करे।

यह आवश्यक नहीं है कि जिस सम्पत्ति की प्रतिरक्षा के लिए बल प्रयोग किया जा रहा है उसकी स्वयं की हो। "किसी अन्य की" शब्दावली से स्पष्ट है कि किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति के सम्बन्ध में किये जाने वाले उक्त अपराधों के लिए प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। धारा 97 में प्रदान किया गया अधिकार समस्त विश्व के विरुद्ध प्राप्त है। इतना ही नहीं, यह अधिकार धारा 98 में उपबन्धित व्यक्तियों (परिपक्व समझ के अभाव का बालक, विकृतचित्त या मत्तता वाले व्यक्ति) के विरुद्ध भी प्राप्त है।

➤ सम्पत्ति की प्रतिरक्षा के अधिकार के अपवाद अथवा सीमायें:-

सम्पत्ति की प्रतिरक्षा का अधिकार, शारीरिक प्रतिरक्षा के अधिकार की भांति, धारा 99 द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के अधीन लागू होता है। संक्षेप में निम्नलिखित परिस्थितियों में सम्पत्ति की प्रतिरक्षा का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है-

- 1- लोकसेवक के कार्य के विरुद्ध
- 2- लोकसेवक के निर्देश से किये गये कार्य के विरुद्ध

- 3- जहां अधिकारियों की सहायता प्राप्त करने का समय हो,
- 4- युक्तियुक्त आशंका से अधिक क्षति नहीं पहुंचाई जा सकती।

➤ **सम्पत्ति की प्रतिरक्षा में कब मृत्यु तक की जा सकती है-**

सम्पत्ति की प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते समय व्यक्ति को कुछ विशेष परिस्थिति में अपराध करने वाले व्यक्ति की मृत्यु तक करने का अधिकार प्रदान किया गया है इस सम्बन्ध में भा०दं०सं० की धारा 103 में उपबंध किये गये हैं, जिनके अनुसार निम्नलिखित अपराधों में मृत्युकारित करने वाले प्रतिरक्षा का अधिकार रहता है-

- 1- लूट
- 2- रात्री-गृहभेदन
- 3- अग्नि द्वारा रिष्टि, जो किसी ऐसे निर्माण या तम्बू या जलपान को की गयी है जो मानव के आवास के रूप में या सम्पत्ति की अभिरक्षा के स्थान के रूप में उपयोग में लाया जाता है।
- 4- चोरी, रिष्टि या गृह-अधिकार, जो ऐसी परिस्थितियों में किया गया है, जिससे युक्तियुक्त रूप से यह आशंका हो कि यदि व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के ऐसे अधिकार का प्रयोग न किया गया तो परिणाम मृत्यु या गम्भीर चोट होगा।

➤ **मृत्यु से भिन्न अन्य अपहानि (धारा 104)**

धारा 104 के अनुसार-यदि अपराध धारा 103 में वर्णित परिस्थितियों में से किसी प्रकार का न हो तो सम्पत्ति की प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार का विस्तार, दोषकर्ता की मृत्यु कारित करने तक नहीं होती है। किन्तु धारा 99 की सीमाओं के अधीन दोषकर्ता की मृत्यु से भिन्न कोई अन्य अपहानि कारित क जा सकती है।

पाटिल हरी मेघजी बनाम गुजरात राज्य वाद (1983) में कहा गया कि किसी व्यक्ति को उस समय प्राइवेट प्रतिरक्षा का अधिकार नहीं प्राप्त होता जबकि वह ऐसे व्यक्ति पर प्रहार करता है, जो भूमि पर गिर चुका है, अस्त्रविहीन है तथा प्रतिरोध करने की स्थिति में नहीं है।

➤ सम्पत्ति की व्यक्तिगत प्रतिरक्षा के अधिकार का प्रारम्भ होना या बना रहना—

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 105 यह उपबन्ध करती है कि सम्पत्ति की प्रतिरक्षा का अधिकार कब आरम्भ होता है और कब तक बना रहता है। इस धारा के विभिन्न खण्ड निम्नलिखित हैं—

1— चोरी के विरुद्ध—

क— जब तक अपराधी सम्पत्ति सहित पहुंच से बाहर नहीं हो जाता, या

ख— लोक प्राधिकारियों की सहायता प्राप्त नहीं कर ली जाती, या

ग— सम्पत्ति पुनः वापस प्राप्त नहीं कर ली जाती।

2— लूट के विरुद्ध—

क— अपराधी किसी व्यक्ति की मृत्यु या चोट या तत्काल सदोष अवरोध करता है या करने का प्रयत्न करता है,

या

ख— जब तक तत्काल मृत्यु का तत्काल चोट या तत्काल सदोष अवरोध का भय बना रहता है।

3— आपराधिक अतिचार या रिष्टि के विरुद्ध—

धारा 105 का खण्ड चार आपराधिक अतिचार या रिष्टि के विरुद्ध प्राइवेट प्रतिरक्षा के अधिकार की समयावधि का उल्लेख करता है। इन अपराधों के विरुद्ध प्रतिरक्षा का अधिकार उस समय तक बना रहता है जब तक कि वह आपराधिक कार्य किया जा रहा है अर्थात् जब तक कि अपराधी व्यक्ति स्वामी के परिसर में रहता है।

4— रात्रि गृह भेदन के विरुद्ध—

तब तक जब तक कि ऐसे गृह-भेदन से उत्पन्न गृहत अतिचार होता रहता है। गृह-भेदन के मामले में अपराधी की मृत्यु तब तक ही की जा सकती है जब कि कि अभियुक्त स्वामी के परिसर में रहता है। ज्यों ही वह बाहर निकल जाता है उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। परन्तु यदि वह सम्पत्ति के साथ भागता है तो उस समय तक अधिकतम प्राप्त होगा जब तक कि वह सम्पत्ति वापस प्राप्त नहीं कर ली जाती है अथवा अधिकारियों की सहायता प्राप्त नहीं कर ली जाती।

प्र0.10 मत्तता से सम्बन्धित विधि को स्पष्ट करें।

धारा-85-

ऐसे व्यक्ति का कार्य जो अपनी इच्छा के विरुद्ध मत्तता में होने के कारण निर्णय में पहुँचने में असमर्थ है— अनैच्छिक मत्तता से संबंधित भारतीय दण्ड संहिता की धारा 85 में वर्णित है, यह धारा एक अभियुक्त को वहीं बचाव प्रदान करती है जो धारा 84 एक अस्वस्थ मस्तिष्क वाले व्यक्ति को प्रदान करती है। धारा 85 के अंतर्गत आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति की मांग करने के लिए अभियुक्त को यह स्थापित करना होगा कि— कार्य करते समय मत्तता के कारण वह समझने में असमर्थ था कि—

क— कार्य की प्रकृति या

ख— वह कि जो कुछ कर रहा था वह दोषपूर्ण या विधिविरुद्ध था, और

यह कि जिस वस्तु ने उसे उन्मत्त किया था या तो उसके बिना ज्ञान के अथवा उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे दी गयी थी।

उसके ज्ञान के बिना अथवा उसकी इच्छा के विरुद्ध-

पदवाली 'बिना उसके ज्ञान के' का अर्थ है कि तथ्य की अज्ञानता कि क्या उसे दिया जा रहा है या मादक पदार्थ में क्या चीज मिला दी गयी है।

स्वैच्छिक मदिरापान अपराध कारित करने के लिए कोई बचाव नहीं है किन्तु जहां मदिरापान अनैच्छिक है जैसे यदि एक व्यक्ति को शराब पीने के लिए बाध्य

किया गया हो या छल कपट द्वारा मदिरापान हेतु प्रेरित किया गया हो या अज्ञान में या कोई मादक पदार्थ उसके ज्ञान के बिना अथवा उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे दिया गया हो तो उसके अपराधिक कार्य का विनिर्माण अपराध कारित होते समय विद्यमान उसकी मानसिक स्थिति को ध्यान में रखकर किया जायेगा।

वाद—

डायरेक्टर आफ पब्लिक प्राजीक्यूशन बनाम बियर्ड का वाद इस विषय पर महत्वपूर्ण निर्णय है। इस वाद में 13 वर्ष की एक लड़की बाजार जाते समय एक मिल के फाटक से निकल रही थी जहां अभियुक्त बियर्ड पहरेदार के रूप में कार्यरत था। अभियुक्त ने बलात्कार करने का प्रयास किया। लड़की ने इसका प्रतिरोध किया। इस पर अभियुक्त ने अपना हाथ लड़की के मुंह पर रख दिया तथा दूसरे हाथ का अंगूठा उसके गले पर रखकर दबाया ताकि लड़की शोर न मचा सके। इस प्रयास में उसने अनजाने में ही हत्या कर दी। कोर्ट आफ क्रिमिनल अपील ने उसे मानव-वध का दोषी पाया किन्तु हाउस हाफ लार्ड्स ने उसे मृत्युदण्ड से दण्डित किया।

धारा—86

किसी व्यक्ति द्वारा जो मत्तता में है किया गया अपराध जिसमें विशेष आशय या ज्ञान का होना आपेक्षित है—

स्वैच्छिक मत्तता संबंधित विधि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 86 में वर्णित है। यदि एक व्यक्ति स्वेच्छा से मत्त हुआ है तो यह माना जायेगा कि उसे वही ज्ञान था जो उसे रहा होता यदि वह मत्त नहीं हुआ होता। कुछ अपराधों में एक विशिष्ट ज्ञान एक अवयव हो सकता जबकि अन्य में आशय ही अवयव होता है। यह धारा यह नहीं कहती कि अभियुक्त के साथ उसी तरह का व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा कि उसका आशय है और जैसा कि उसकी कल्पना की गयी

होती यदि वह मत्त नहीं होता। जहां तक ज्ञान का प्रश्न है उसके संबंध में एक निश्चित अवधारणा है किन्तु अपराध को गठित करने के लिए विशिष्ट आशय के बारे में ऐसी कोई अवधारणा नहीं है। यह धारा मत्त व्यक्ति को एक सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति के ज्ञान से युक्त मानती है किन्तु उसे सामान्य प्रज्ञा वाले व्यक्ति के आशय से युक्त नहीं मानती।

ऐच्छिक मत्ता धारा 86 के अंतर्गत उन मामलों में कोई बचाव नहीं प्रदान करती जिसमें अपराध गठित करने के लिए मात्र आवश्यक ज्ञान का अभाव है यद्यपि इसका प्रयोग यह दिखाने के लिए किया जा सकता है कि यदि किसी अपराध की आवश्यकता थी तो वह अनुपस्थित था।

वाद—

वासुदेव बनाम पेप्सू राज्य का मामला इस विषय पर भारत में प्रमुख वाद है। उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त को हत्या के लिए दोषी ठहराते हुए कहा कि— “जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है उन्मत्त व्यक्ति को उसी ज्ञान से युक्त माना जाये जिससे कि एक सामान्य प्रज्ञा वाला व्यक्ति युक्त होता है। किन्तु जहां तक आशय का प्रश्न है इसका निर्धारण मामले की सामान्य परिस्थितियों से, मत्तता की मात्रा को उचित स्थान देते हुए, किया जाना चाहिए। क्या तत्समय वह व्यक्ति अपना होश—हवाश खो चुका था? यदि ऐसा था, तो उसके विरुद्ध आवश्यक आशय की प्रकल्पना नहीं की जायेगी। किन्तु यदि उसकी मत्ता गम्भीर प्रकृति की नहीं थी और यदि तथ्यों से यह स्पष्ट होता था कि वह जानता था कि वह क्या करना चाहता था तो हम इस सिद्धान्त को लागू कर सकते हैं कि एक व्यक्ति अपने कृत्य या कृत्यों के स्वाभाविक परिणामों की इच्छा करता है।”

प्र0.11 दुष्प्रेरण की परिभाषा है। दुष्प्रेरण के विभिन्न तरीकों को समझायें।

(इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं— दुष्प्रेरण)

30.

बहुत से अपराध केवल किये ही इसलिए जाते हैं कि उस अपराध के कर्ता को अन्य व्यक्तियों से उत्साह, सहारा व सहायता मिल जाती है अन्यथा वह अकेला शायद ही उस अपराध को करने का साहस करे। इस प्रकार की सहायता करने वाला व्यक्ति उस अपराध के किये जाने में वास्तविक रूप से भाग नहीं लेता, मात्र इस उस कार्य के किये जाने की भूमिका तैयार करता है। लेकिन फिर भी अपराध विधि उस व्यक्ति के कार्यों को दण्डित करती है क्योंकि अकेला व्यक्ति किसी अपराध को करने की हिम्मत आसानी से नहीं जुटा पाता है। साधारणतः यह उसके दोस्तों की सलाह व सहायता से होता है।

संहिता की धारा 107 में दुष्प्रेरण की सामान्य परिभाषा दी गई है। धारा 107 के अनुसार वह व्यक्ति किसी वाद का दुष्प्रेरण करता है जो—

- 1— उस बात को करने के लिए किसी व्यक्ति को उकसाता है, या
- 2— अपराध करने के लिए किसी को षडयंत्र में सम्मिलित करता है, या
- 3— अपराध करने के लिए किसी व्यक्ति को साशय सहायता देता है।

➤ दुष्प्रेरण के तरीके—

धारा 107 के अनुसार निम्न तीन प्रकार से दुष्प्रेरण का अपराध किया जा सकता है—

- 1— उकसाने द्वारा दुष्प्रेरण— 'उकसाना— का शाब्दिक अर्थ है किसी कार्य को करने के लिए बढ़ावा देना, उत्तेजित करना, उद्दीप्त करना, भड़काना अथवा प्रोत्साहित करना। साधारण शब्दों में उकसाहट, किसी व्यक्ति को सदोष कार्य करने के लिए भड़काना है। उकसाहट के लिए आवश्यक है कि कुछ सक्रिय कार्यवाही की जाये जिसका प्रभाव अपराध कार्य को प्रोत्साहन देना हो। किसी कार्य को करने का प्रयत्न मात्र भी उकसाने द्वारा दुष्प्रेरण हो सकता है। सलाह सदैव दुष्प्रेरण नहीं होता, क्योंकि दुष्प्रेरण के लिए सक्रिय कार्यवाही जरूरी होती है। उकसाने की

क्रिया प्रत्यक्ष भी सकती है और परोक्ष भी। मोहित पाण्डे के वाद (1871) में अभियुक्त ने एक महिला से कहा कि यदि मरते समय राम-राम कहे तो वह सती हो जायेगी। वह महिला की चिता तक गया और उसने राम-राम का उच्चारण किया। चिता में आग लगा क रवह जल मरी। यह धारण किया गया कि अभियुक्त आत्महत्या के दुष्प्रेरण का दोषी था।

उकसाना, उस व्यक्ति के जो इसे प्रकट करने के लिए बाध्य है, जानबूझकर दुष्पदेशन अथवा आवश्यक तत्व को छिपाने द्वारा भी गठित हो सकता है। साथ ही किसी कार्य को करने का प्रयत्न मात्र भी उकसाने का दुष्प्रेरण हो सकता है। जैसे-लोकसेवक को धूस देने का प्रयत्न करना भी, दुष्प्रेरण कारित करता है। कभी-2 अप्रत्यक्ष सलाह या संकेत भी उकसाने द्वारा दुष्प्रेरण घटित करता है। इस प्रकार उकसाने द्वारा दुष्प्रेरण कई प्रकार से किया जा सकता है। धारा-108 के स्पष्टीकरण 2 के अनुसार दुष्प्रेरण का अपराध गठित होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दुष्प्रेरित कार्य किया जाये या अपराध गठित करने के लिए अपेक्षित प्रभाव कारित हो। जैसे- अ, ब को स, की हत्या करने को उकसाता है लेकिन ब ऐसी करने से मना कर देता है। इस दशा में भी अ, हत्या के दुष्प्रेरण के लिए दोषी होगा।

2- षडयंत्र द्वारा दुष्प्रेरण-

दुष्प्रेरण का अपराध, षडयंत्र के द्वारा भी किया जा सकता है। परन्तु मात्र षडयंत्र दुष्प्रेरण नहीं हो सकता, जब तक कि उसके अनुसरण में कोई कार्य या अवैध लोप न किया जाये। षडयंत्र द्वारा दुष्प्रेरण में ये भी आवश्यक नहीं है कि दुष्प्रेरक, मुख्य अपराधी से सम्बन्ध बनाए रखें। यही पर्याप्त है कि वह उस षडयंत्र में भाग लेता है जिसके अनुसरण में अपराध घटित हुआ है।

षडयंत्र द्वारा दुष्प्रेरण के अपराध की रचना के लिए चार बातों का होना आवश्यक है-

- 1- कम से कम दो व्यक्ति हो।
- 2- किसी अपराध कार्य को करने के लिए षडयंत्र किया जाये,
- 3- उस षडयंत्र के परिणाम स्वरूप कोई कार्य अथवा अवैध लोप किया जाये।
- 4- वह कार्य अथवा अवैध लोप उन कार्यों को करने का स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए।

3- साशय सहायता द्वारा दुष्प्रेरण-

दुष्प्रेरण का तीसरा तरीका साशय सहायता द्वारा दुष्प्रेरण करना है। साशय सहायता द्वारा दुष्प्रेरण तीन प्रकार से हो सकता है— 1- कार्य करके सहायता प्रदान करता 2- कार्य न करके अवैध लोप द्वारा, जिसका वही परिणाम, हो, सहायता करना 3- कार्य किये जाने को आसान बनाकर सहायता करना। साशय सहायता द्वारा दुष्प्रेरण में व्यक्ति तभी दण्डित होगा जब कार्य यथार्थतः घटित हो जाये। जैसे- अ, जो एक नौकर है, रात्रि को अपने मालिक का घर इस आशय से खुला छोड़ देता है कि चोर आकर चोरी कर लें, किन्तु रात्रि को कोई चोर नहीं आता है। यहां पर नौकर साशय सहायता द्वारा दुष्प्रेरण के लिए दोषी नहीं होगा क्योंकि कार्य यथार्थतः घटित नहीं हुआ है। साथ ही केवल सहायता पहुंचाना ही दुष्प्रेरण नहीं होगा, जब तक सहायता पहुंचाने वाला व्यक्ति यह न जानता हो कि कोई अपराध कारित किया जा रहा है या कारित किये जाने की सम्भावना है।

इस प्रकार उपरोक्त तीन तरीकों से दुष्प्रेरण किया जा सकता है।

प्र0.12 दुष्प्रेरक कौन है? दुष्प्रेरक के आपराधिक दायित्व का वर्णन करें तथा दण्ड के प्राविधान बतायें।

उ0.

धारा 108 दुष्प्रेरक की परिभाषा प्रस्तुत करती है। इसके अनुसार वह व्यक्ति अपराध का दुष्प्रेरण करता है, जो किसी को अपराध किये जाने का दुष्प्रेरण करता

है अथवा ऐसे कार्य के किये जाने का दुष्प्रेरण करता है जो अपराध होता, यदि वह कार्य अपराध करने के लिए विधि अनुसार समर्थ व्यक्ति द्वारा उसे आशय या ज्ञान से, जो दुष्प्रेरक का है, किया जाता।

धारा 108 में दुष्प्रेरक शब्द को स्पष्ट करने के लिए पांच स्पष्टीकरण भी दिये गये हैं। इसके अनुसार—

(1) किसी कार्य के अवैध लोप का दुष्प्रेरण भी अपराध की कोटि में आयेगा, चाहे दुष्प्रेरक उस कार्य को करने के लिए स्वयं आबद्ध न हो।

(2) दुष्प्रेरण का अपराध गठित करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दुष्प्रेरित कार्य किया जाये या अपराध गठित करने के लिए अपेक्षित प्रभाव कारित हो। जैसे— क, ख को उकसाता है कि वह ग, की हत्या करे। ख इनका कर देता है। क, ख को हत्या का दुष्प्रेरण करने हेतु दोषी है। अन्य उदाहरण के अनुसार— क, ख को उकसाता है कि वह ग, की हत्या करे। ख ऐसी उकसाहट के अनुसरण में ग, को चाकू घोंप देता है। ग, का घाव ठीक हो जाता है। क, ख को हत्या को दुष्प्रेरण करने हेतु दोषी है।

(3) यह आवश्यक नहीं है कि दुष्प्रेरित व्यक्ति विधि के अनुसार समर्थ हो या उसका भी वही दूषित ज्ञान या आशय हो। जैसे क, एक घर में आग लगाने हेतु एक शिशु/विकृतचित्त हो उकसाता है। वह शिशु/विकृतचित्त उकसाहट के परिणाम स्वरूप घर में आग लगा देता है। शिशु/विकृतचित्त ने कोई अपराध नहीं किया है। परन्तु क, घर में आग लगाने के दुष्प्रेरण का दोषी है।

(4) दुष्प्रेरण का दुष्प्रेरण भी अपराध है।

(5) षडयंत्र द्वारा दुष्प्रेरण में यह आवश्यक नहीं है कि दुष्प्रेरक, अपराधकर्ता के साथ मिलकर अपराध की योजना बनाये।

दुष्प्रेरक का दायित्व—

विभिन्न परिस्थितियों में दुष्प्रेरक का दायित्व इस प्रकार है:—

1- भारत के बाहर के अपराधों का भारत में दुष्प्रेरण:-

धारा-108-क के अनुसार एक व्यक्ति जो भारत से बाहर किसी ऐसे कार्य के किये जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो भारत में अपराध होता तो वह व्यक्ति दुष्प्रेरण का दोषी होगा। जैसे-क, एक भारतीय नागरिक है, जो इंग्लैण्ड के नागरिक ख, को इंग्लैण्ड में हत्या करने के लिए दुष्प्रेरित करता है। ख, हत्या कर देता है। क, हत्या के दुष्प्रेरण का दोषी होगा।

2- दुष्प्रेरित कार्य से भिन्न कार्य किया जाये:-

धारा-111 के अनुसार जब किसी कार्य का दुष्प्रेरण किया जाता है और उससे भिन्न कोई कार्य किया जाता है तब दुष्प्रेरक उस भिन्न कार्य के दुष्प्रेरण के लिए दायी होगा, वशर्ते किया गया कार्य, दुष्प्रेरण का अधिसंभाव्य परिणाम **(Probable Consequence)** था और उसी उकसाहट के अनुसरण में किया गया था। जैसे-क, एक शिशु को ख के भोजन में जहर डालने के लिए उत्प्रेरित करता है। वह शिशु उकसाहट के परिणामस्वरूप भूल से ग के भोजन में जहर डाल देता है। शिशु का कार्य दुष्प्रेरण का अधिसंभाव्य परिणाम था। अतः क, शिशु को ग के भोजन में जहर मिलाने का दुष्प्रेरण करने हेतु दायी होगा। दूसरी ओर जैसे- क, ख को ग, का घर जलाने के लिए उत्प्रेरित करता है। ख, ग के घर में आग लगा देता है और उसी समय वहां रखी सम्पत्ति को चोरी करता है। अ, घर जलाने के दुष्प्रेरण का दोषी होगा परन्तु चोरी के दुष्प्रेरण का नहीं क्योंकि चोरी एक भिन्न कार्य था जो उस घर जलाने का अधिसंभाव्य परिणाम नहीं था।

3- दुष्प्रेरित अपराध से भिन्न अपराध-

धारा-112 के अनुसार यदि एक व्यक्ति दूसरे को किसी कार्य के लिए दुष्प्रेरित करता है और वह अपराधकर्ता दुष्प्रेरित कार्य से भिन्न कार्य कर देता है,

जिससे भिन्न अपराध गठित होता है तो वह दुष्प्रेरक उस भिन्न अपराध के लिए भी समान रूप से उत्तरदायी होगा, यदि वह इसको सम्भाव्य जानता था—क, ख को एक लोक सेवक का प्रतिरोध करने के लिए उकसाता है। ख, लोक सेवक का प्रतिरोध करता है और उसी दौरान उसे स्वेच्छया घोर उपहति कर देता है। लोक सेवक का प्रतिरोध तथा घोर उपहति दो भिन्न अपराध है। क, दोनों अपराधों के दुष्प्रेरण हेतु दायीं होगा यदि वह सम्भाव्य जानता था कि ख, लोक सेवक का प्रतिरोध करने में उसे घोर उपहति कर सकता है।

4- दुष्प्रेरक के आशय से भिन्न परिणाम—

धारा-113 के अनुसार यदि कार्य दुष्प्रेरक की इच्छानुसार किया जाये पर उसका प्रभाव दुष्प्रेरक के आशय से भिन्न हो तो यदि दुष्प्रेरक उस प्रभाव के बारे में जानता था तो वह उस भिन्न प्रभाव के लिए समान रूप से उत्तरदायी ठहराया जायेगा। जैसे—क, ख को उकसाता है कि वह ग, को घोर उपहति करे। ख, उकसाहट के अनुसरण में ग, को घोर उपहति करता है। परिणामतः ग, की मृत्यु हो जाती है। यहां यदि क, यह जानता था कि दुष्प्रेरित घोर उपहति के कार्य में मृत्यु कारित हो जाना सम्भाव्य है तो क, हत्या के दुष्प्रेरण के लिए दोषी होगा।

➤ दुष्प्रेरण का दण्ड:—

धारा 109 के अनुसार किसी ऐसे अपराध के दुष्प्रेरण के लिए, जिसके दण्ड के सम्बन्ध में पृथकतः प्राविधान नहीं किया गया हो, तो कारित अपराध का दण्ड ही दुष्प्रेरण का भी होगा। धारा 110 के अनुसार यदि दुष्प्रेरक के आशय से भिन्न कार्य घटित हो तो उस भिन्न अपराध के लिए उपबन्धित दण्ड से ही दुष्प्रेरक दण्डित होगा। धारा 114 के अनुसार यदि अपराध किये जाते समय दुष्प्रेरक घटनास्थल पर मौजूद है तो उसे मुख्य अपराधी माना जाता है।

प्र0.13 आपराधिक षडयंत्र को परिभाषित करें। आपराधिक षडयंत्र के आवश्यक तत्वों का वर्णन करें तथा दुष्प्रेरण से अंतर स्थापित करें।

(इस प्रश्न में शामिल टिप्पणियाँ हैं— षडयंत्र, षडयंत्र व दुष्प्रेरण में अंतर)

उ०.

आधुनिक समय में संगठित रूप से अपराध करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। अपराध करने से पहले अभियुक्त अन्य व्यक्तियों की सहायता व सहयोग प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार की सहायता, दूसरे व्यक्तियों के साथ समझौता करके प्राप्त की जाती है जिसे दूसरे शब्दों में षडयंत्र कहा जाता है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 120 –ए के अनुसार— जबकि दो या अधिक व्यक्ति—

- 1— कोई अवैध कार्य अथवा
- 2— कोई ऐसा कार्य, जो अवैध नहीं है, अवैध साधनों द्वारा करने या करवाने को सहमत होते हैं, तब ऐसी सहमति आपराधिक षडयंत्र कहलाती है, परन्तु किसी अपराध को करने की सहमति के सिवाय कोई सहमति, आपराधिक षडयंत्र तब तक न होगी, जब तक सहमति के अलावा कोई काय, उसके अनुसरण में, उस सहमति के एक या अधिक पक्षकारों द्वारा नहीं कर दिया जाता।

➤ **आपराधिक षडयंत्र के आवश्यक तत्व—**

आपराधिक षडयंत्र के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

- 1— दो या दो से अधिक व्यक्तियों में समझौता हो,
 - 2— समझौता किसी अवैध कार्य को अथवा वैध कार्य को अवैध साधनों द्वारा करने या करवाने के लिए किया गया हो,
 - 3— किसी आपराधिक कार्य को करने से भिन्न कार्य को करने के लिए किये गये समझौतों के अनुसरण में पृथक कार्य किया जाना चाहिए।
- 1— दो या दो से अधिक व्यक्ति—

आपराधिक षडयन्त्र के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि किसी व्यक्ति ने स्वयं अपने साथ षडयंत्र किया था। तोपनदास बनाम बम्बई राज्य (1956) के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 120-ए के अनुसार षडयंत्र के लिए दो या दो से अधिक व्यक्ति आपस में किसी कार्य को करने के लिए सहमत होने चाहिए। यदि चार व्यक्तियों पर आरोप लगाया जाये और तीन को न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया जाये तो बाकी बचे अकेले व्यक्ति को षडयन्त्र के लिए दण्डित नहीं किया जा सकता क्योंकि मात्र अकेला व्यक्ति स्वयं षडयंत्र नहीं कर सकता।

2- दो या दो से अधिक व्यक्तियों में अवैध कार्य का समझौता— समझौता ही षडयन्त्र के अपराध का सार है। केवल दो व्यक्ति होने मात्र से षडयन्त्र की संरचना नहीं हो जाती बल्कि उन व्यक्तियों में समझौता होना चाहिए।

3- समझौता अवैध कार्य अथवा वैध कार्य अवैध साधनों द्वारा करने का हो—

दो या दो से अधिक व्यक्तियों में कोई भी समझौता हो जाने से ही आपराधिक षडयन्त्र का गठन नहीं हो जाता, जब तक कि वह समझौता अवैध कार्य को करने के लिए अथवा वैध कार्य को अवैध साधनों द्वारा करने या करवाने के लिए न किया गया हो।

4- समझौते के अनुसार के कार्य का किया जाना— साधारणतया आपराधिक षडयन्त्र के मामले में व्यक्ति का आपस में सहमत होना पर्याप्त होता है, परन्तु धारा 120-ए का दूसरा भाग स्पष्ट रूप से उपबन्धित करता है कि यदि दो व्यक्तियों में से कोई किसी अपराध कार्य को करने से भिन्न किसी बात के लिए सहमत होते हैं तो मात्र सहमति पर्याप्त नहीं मानी जाती वरन् समझौते के अलावा कुछ कार्य भी किया जाना चाहिए।

➤ आपराधिक षडयन्त्र व दुष्प्रेरण में अन्तर—

आपराधिक षडयन्त्र (धारा-120-ए)	दुष्प्रेरण (धारा 107)
1- आपराधिक षडयन्त्र एक प्रकार से ही होता है।	1- दुष्प्रेरण तीन प्रकार का होता है- क- उकसाने के द्वारा, ख- साशय सहायता के द्वारा ग- षडयन्त्र के द्वारा।
2- षडयन्त्र में दो या अधिक व्यक्तियों का समझौता होता है।	2- दुष्प्रेरण अकेला व्यक्ति भी कर सकता है।
3- आपराधिक षडयन्त्र, दुष्प्रेरण का ही एक भाग है।	3- दुष्प्रेरण में ऐसा कुछ नहीं है।
4- षडयन्त्र में अवैध कार्य की मात्र सहमति, षडयन्त्र सृजित करती है।	4- दुष्प्रेरण में सहमति के पश्चात् विवर्त कार्य या लोप होना आवश्यक है।

प्र0.14 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दिये जाने वाले दण्डों का उल्लेख कीजिए।

उ0- भारतीय दण्ड संहिता की धारा 53 के अनुसार संहिता में मुख्यतः 5 प्रकार के दण्ड दिये जा सकते हैं-

1- **मृत्युदण्ड**- यह दण्ड अत्यन्त गम्भीर अपराधों के लिए दिया जाता है। **बच्चनसिंह बनाम राज्य (1980)** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदण्ड "दुर्लभ से दुर्लभतम" मामलों में दिया जाना चाहिए। भारतीय दण्ड संहिता में निम्नलिखित 8 अपराधों के लिए मृत्युदण्ड दिया जा सकता है (पहले 9 धारारें थीं)-

क- धारा 121 - भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध, युद्ध का प्रयत्न या युद्ध का दुष्प्रेरण

करना।

ख- धारा 132- विद्रोह का दुष्प्रेरण करना, यदि उसके परिणाम स्वरूप विद्रोह हो जाये।

ग- धारा 194- मृत्यु से दण्डनीय अपराध की दोष सिद्धि कराने के आशय से मिथ्या

साक्ष्य देना या गढ़ना तथा परिणामस्वरूप निर्दोष व्यक्ति को दोषसिद्धि होकर फांसी हो जाये।

घ- धारा 302- हत्या का दण्ड

ङ- धारा 303 - आजीवन कारावास के दण्डादेश के अधीन के व्यक्ति द्वारा हत्या (यह धारा मिठ्ठू बनाम पंजाब राज्य (1983) वाद में, संविधान के अनुच्छेद 14 एवं 21 के उल्लंघन में मानकर अवैध घोषित कर दी गयी है। अतः धारा 303 के अन्तर्गत की दोषसिद्धि को धारा 302 में परिवर्तित कर दिया जाता है। अतः धारा 303, 1983 के बाद से प्रभावहीन हो गयी है।)

च- धारा 305 - शिशु या उन्मत्त व्यक्ति की आत्महत्या का दुष्प्रेरण।

छ- धारा 307 - आजीवन कारावास के अधीन के व्यक्ति द्वारा हत्या का प्रयत्न यदि उपहति कारित हुई हो।

ज- धारा 364क - मुक्तिधन मांगने के लिए व्यपहरण (1983 में जोड़ी गई)।

झ- धारा 396 - हत्या सहित डकैती।

2- आजीवन कारावास- इस प्रकार के दण्ड में व्यक्ति को आजीवन के लिए कारावास में रखा जाता है। आजीवन कारावास से तात्पर्य है- अभियुक्त को उसकी आयु की सम्पूर्ण अबशिष्ट अवधि के लिए सजा, जब तक कि सजा में पूर्णतः या अंशतः समुचित सरकार द्वारा छूट नहीं दे दी जाती। गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1961) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आजीवन कारावास से दण्डित व्यक्ति अपना शेष जीवन कारावास में बिताने के लिए बाध्य है, यदि वह सजा उपयुक्त अधिकारी द्वारा कम या समाप्त कर दी जाये। पहले मृत्युदण्ड व आजीवन कारावास से दण्डनीय अपराधों में मृत्युदण्ड आम तौर पर दिया

जाता था तथा आजीवन कारावास अपवाद—स्वरूप। परन्तु आजकल दोनों प्रकार के दण्डों से दण्डनीय अपराधों में आजीवन कारावास का दण्ड साधारणतया अपराधी को दिया जाता है। भा०द०सं० में आजीवन कारावास लगभग 51 अपराधों के लिए जाता है।

- 3— **कारावास**— इस प्रकार के दण्ड में अपराधी को जेल में निश्चित अवधि के लिए रखा जाता है। कारावास तीन प्रकार का होता है—कठोर या सश्रम कारावास, साधारण कारावास, एकान्त कारावास।
- 4— **सम्पत्ति का समपहरण**— इसमें अपराधी की सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाता है। यह दण्ड भा०द०सं० (संशोधन) अधिनियम 1921 द्वारा निरसित कर दिया गया है (धारा 61 के अनुसार)।
- 5— **जुर्माना**— भा०द०सं० का यह मान्य दण्ड है। इसमें अपराधी को दोष सिद्ध होने पर न्यायालय निश्चित मात्रा में जुर्माना अदा करने के लिए कहता है। जुर्माने की मात्रा प्रत्ये अपराध में भिन्न—भिन्न होती है।

Compulsory Question

प्र०.15 संक्षिप्त टिप्पणी लिखें—

- | | |
|--------------------------------------|--------------------------------|
| (a) अपराध एवं अपकृत्य में अंतर | (m) अपराध एवं अपकृत्य में अंतर |
| (b) आपराधिक कृत्य अंतर | (n) अपराध एवं अपकृत्य में अंतर |
| (c) भा०द०सं० में बहिर्प्रादेशिक अंतर | (o) अपराध एवं अपकृत्य में अंतर |
| क्षेत्राधिकार का सिद्धांत | (p) दुराशय |
| (d) प्रतिनिहित दायित्व | (q) सामान्य आशय |
| (e) तथ्य की भूल एवं विधि की भूल | (r) कठोर दायित्व |

- | | |
|-------------------------|---------------------------------|
| (f) दुर्घटना | (s) संयुक्त दायित्व |
| (g) आवश्यकता | (t) प्रयत्न |
| (h) बालकपन | (u) तैयारी और प्रयत्न में अन्तर |
| (i) मत्तता | (v) प्रयोजन या हेतु |
| (j) सहमति | (w) भा0दं0सं0 की धारा-5 |
| (k) सद्भावपूर्ण संसूचना | (x) निगम का आपराधिक |

दायित्व

- (i) धमकी के अधीन किये गये कार्य

उ0.

(a) अपराध व अपकृत्य में अन्तर— अपराध व अपकृत्य में निम्न अंतर हैं—

- 1— अपकृत्य सिविल विधि है, जबकि अपराध दण्डिक विधि में आता है।
- 2— अपकृत्य से व्यक्ति विशेष प्रभावित होता है, जबकि अपराध से सम्पूर्ण समाज प्रभावित होता है।
- 3— अपकृत्य करने वाले से हर्जाना दिया जाता है, जबकि अपराध करने वाले को दण्ड दिया जाता है।
- 4— अपकृत्य में आशय का महत्व न्यूनतम होता है, जबकि अपराध में आशय महत्वपूर्ण होता है।
- 5— अपकृत्य में प्रभावित व्यक्ति व अपकृत्यकर्ता परस्पर समझौता करके मामले का समापन कर सकते हैं परन्तु अपराध चूंकि राज्य के विरुद्ध होता है, अतः पक्षकार परस्पर समझौते द्वारा अपराध का समापन नहीं कर सकते हैं।

(b) अपराधिक कृत्य— किसी अपराध के लिए व्यक्ति का मात्र दुराशय पर्याप्त नहीं है बल्कि दण्डनीय होने के लिए आपराधिक आशय को किसी स्वेच्छापूर्ण कार्य या वैध लोप के रूप में स्पष्ट होना चाहिए। अर्थात् किसी

आपराधिक कृत्य में ऐच्छिक कृत्य व अवैध लाप दोनों शामिल हैं। यदि विधि द्वारा किसी व्यक्ति पर कोई दायित्व सौंपा गया है और वह उस दायित्व का निर्वहन नहीं करता है तो इस लोप हेतु उसे दण्डित किया जा सकता है। जैसे A, B को साशय नदी में ढकेल देता है और B की मृत्यु हो जाती है, तो A अपने आपराधिक कृत्य द्वारा B की मृत्यु हेतु दायी है। इसी प्रकार जैसे A अपनी पत्नी व बच्चे को भूख से मरने देता है। पत्नी व बच्चे का भरण पोषण उसका विधिक दायित्व है जिसका वह अवैध लोप करता है। अतः A अपनी पत्नी व बच्चे की मृत्यु हेतु दायी है।

(c) बर्हिप्रादेशिक क्षेत्राधिकार का सिद्धान्त—भा0दं0सं0 की धारा 3, 4 बर्हिप्रादेशिक क्षेत्राधिकार से सम्बन्धि है। जहां किसी भारतीय नागरिक द्वारा भारत की सीमा के बाहर अपराध किया जाता है तो ऐसा व्यक्ति भारतीय न्यायालय द्वारा विचारित और दंडित हो सकता है और ऐसे क्षेत्राधिकार को बर्हिप्रादेशिक क्षेत्राधिकार कहते हैं। भारत से बाहर अपराध होने की दशा में अपराधी को भा0दं0सं0 के तहत दंडित किया जा सकता है, यदि अभियुक्त की भारत में उपस्थिति सुनिश्चित की जा सके। यदि ऐसे अपराध भारत में रजिस्टर्ड किसी पोत या विमान पर वह कहीं भी हो, किए गए हों तो भी बर्हिप्रादेशिक क्षेत्राधिकार का सिद्धान्त लागू होगा और अपराधी भा0दं0सं0 के तहत दायी होगा। उदाहरण स्वरूप क, जो एक भारतीय नागरिक है, उगान्डा में हत्या करता है। वह भारत के किसी स्थान में, जहां वह पाया जाये, हत्या के लिए विचारित और दोष सिद्ध किया जा सकता है।

(d) प्रतिनिहित दायित्व— सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने ही कार्यों के लिए उत्तरदायी होता है, दूसरों के कृत्य के लिए नहीं। परन्तु अपवादिक दशाओं में जब कोई व्यक्ति किसी अन्य के कृत्य के लिए दायी होता है तो ऐसे दायित्व प्रतिनिहित दायित्व कहलाता है। प्रतिनिहित दायित्व का सिद्धान्त

सर्वप्रथम आर0 बनाम हिगिन्स (1730) के बाद में प्रतिपादित किया गया। भा0दं0सं0 की धारा 154, 155, 156 में प्रतिनिहित दायित्व का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार कोई भूस्वामी या अधिभोगी प्रतिनिहित रूप से दायी होते हैं, यदि उनकी भूमि पर अवैध सभा आयोजित होती है या बल्बा होता है। वे तब भी दायी होंगे, भले ही वे अपने अभिकर्ता के कार्यों से अवगत न हों। प्रतिनिहित दायित्व उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी होता है जो बलवे को प्रोत्साहित करते हैं या मौन समर्थन देते हैं या इसे रोकने में अवैध लोप करते हैं।

(e) तथ्य की भूल व विधि की भूल:-

लगभग सभी देशों की दण्ड विधियों में तथ्य की भूल को एक सामान्य सिद्धान्त के रूप में बचाव स्वीकार किया गया है अर्थात् यदि कोई व्यक्ति तथ्य की भूल के कारण कोई आपराधिक कार्य करता है तो उसे उसके कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जायेगा। तथ्य की भूल बचाव का एक अच्छा आधार हो सकती है। यह सिद्धान्त इस सूत्र पर आधारित है कि “ignorantia facti excusat” अर्थात् “ignorance of fact is a good excuse” परन्तु बचाव केवल उसी समय मिलेगा जब कार्य करने वाले व्यक्ति ने कार्य सद्भावनापूर्वक किया हो।

भा0दं0सं0 की धारा 76 तथा 79 में तथ्य की भूल को आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति का आधार माना गया है। धारा 76 के अनुसार—कोई बात अपराध नहीं है, जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाये जो उसे करने के लिए विधि द्वारा आबद्ध हो या जो तथ्य की भूल के कारण न कि विधि की भूल के कारण सद्भावनापूर्वक विश्वास करता हो कि वह उसे करने के लिए विधि द्वारा आबद्ध है। धारा 79 उपबन्धित करती है कि कोई बात अपराध नहीं है जो ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाये जो उसे करने के लिए

न्यायनुमत हो या तथ्य की भूल के कारण न कि विधि की भूल के कारण सद्भावनापूर्वक विश्वास करता हो कि वह उसे करने के लिए विधि द्वारा न्यायानुमत है।

उपर्युक्त सामान्य सिद्धान्त, कि तथ्य की भूल को माफ किया जा सकता है, के निम्नलिखित दो उपवाद हैं—

- 1— जहां परिस्थितियाँ इस प्रकार की हैं कि वास्तविक वस्तुस्थिति का पता जांच पड़ताल से लगाया जा सकता है वहां इसका लाभ नहीं मिल सकता।
- 2— जहाँ व्यक्ति पर कठोर दायित्व का भार डाला गया हो वहाँ भी यह बचाव नहीं मिल सकता।

विशेष परिस्थितियों के कारण तथ्य की भूल को तो बचाव स्वीकार किया जा सकता है परन्तु विधि की भूल के कारण किये गये अपराध-कार्य के लिए व्यक्ति को हर हालत में उत्तरदायी ठहराया जायेगा, क्योंकि विधि की उपधारणा है कि सभी व्यक्ति विधि जानते हैं। **आर बनाम बेली (1800)** के मामले में जहाज के कप्तान को एक अधिनियम के तहत दण्डित किया जबकि वह समुद्र से लौट रहा था तथा उक्त अधिनियम के स्वीकृति के सम्बन्ध में उसे किसी प्रकार की जानकारी नहीं थी क्योंकि वह उस समय समुद्र में था। न्यायालय ने इसे विधि की भूल करार देते हुए कहा कि इस बचाव का सहारा अभियुक्त नहीं ले सकता है क्योंकि देश की विधि की जानकारी सभी को होनी चाहिए, चाहे उसे प्राप्त करना ही असम्भव क्यों न हो।

- (f) **दुर्घटना**— भा0दं0सं0 की धारा 80 में 'दुर्घटना' को एक अपवाद के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 80 के अनुसार "कोई बात अपराध नहीं है जो दुर्घटना या दुर्भाग्य से और किसी

आपराधिक आशय या ज्ञान के बिना विधिपूर्ण प्रकार से, विधिपूर्ण साधनों द्वारा और उचित सतर्कता और सावधानी के साथ विधिपूर्ण कार्य करने में हो जाती है।" जैसे – "क' कुल्हाड़ी से काम कर रहा है कुल्हाड़ी का फल उसमें से निकलकर उछल जाता है और निकट खड़ा हुआ व्यक्ति उससे मारा जाता है। यहां यदि "क" की ओर से उचित सावधानी का कोई अभाव नहीं था तो उसका कार्य माफी योग्य है और अपराध नहीं है।

'दुर्घटना' शब्द का शाब्दिक अर्थ आकस्मिक घटना से है। साधारण बोलचाल की भाषा में दुर्घटना से तात्पर्य उस घटना से है जो बिना व्यक्ति की इच्छा जाने अथवा कल्पना के होती है। विधि में भी इसका अर्थ लगभग इसी प्रकार लगाया जाता है। धारा 80 में दुर्घटना व दुर्भाग्य दोनों को ही बचाव के रूप में स्वीकार किया गया है। दुर्घटना के बचाव को केवल निम्नलिखित शर्तों के पूरा होने पर स्वीकार किया जा सकता है—

- 1— कार्य दुर्घटना अथवा दुर्भाग्यपूर्ण हो।
- 2— कार्य बिना आशय अथवा आपराधिक ज्ञान के किया गया हो।
- 3— कार्य विधिपूर्ण हो, धारा 80 का बचाव केवल उसी समय मिल सकता है जब अभियुक्त यह साबित कर दे कि उसका कार्य विधिपूर्ण था।
- 4— कार्य विधिपूर्ण साधनों से किया गया हो।
- 5— कार्य विधि पूर्ण प्रकार से किया गया हो।
- 6— कार्य सद्भावना तथा सतर्कता से किया गया हो।

यदि उपरोक्त छह में से कोई एक तत्व भी अनुपस्थित हो, तो इस धारा के अन्तर्गत प्रतिरक्षा समाप्त हो जाएगी। इस धारा में प्रयुक्त शब्दों 'दुर्घटना' और 'दुर्भाग्य' को संहिता में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है। सामान्यतः इनमें अप्रत्याशितता का तत्व विद्यमान रहता है और आशय और ज्ञान अनुपस्थित होता है, जबकि परिणाम सामान्यतः हानिकारक या बुरा होगा।

आवश्यकता— भा0दं0सं0 की धारा 81 में 'आवश्यकता' को एक बचाव के रूप में स्वीकार किया गया है। धारा 81 के अनुसार— कोई बात केवल इस कारण अपराध नहीं है कि वह ये जानते हुए की गई है कि उससे हानि होना सम्भव है, यदि वह हानि पहुंचाने के किसी आपराधिक आशय के बिना और व्यक्ति या सम्पत्ति की अन्य हानि को रोकने या परिवर्जन करने के प्रयोजन से सद्भावना पूर्वक की गई हो। जैसे—'क' के बड़े अग्निकाण्ड के समय आग को फैलने से रोकने के लिए गृहों को गिरा देता है। वह इस कार्य को मानव जीवन या सम्पत्ति को बचाने के आशय से सद्भावनापूर्वक करता है। यहां यह पाया जाता है कि निवारण की जाने वाले अपहानि इस प्रकृति की और इतनी आसन्न थी कि 'क' का कार्य माफी योग्य है तो क उस अपराध का दोषी नहीं है। इस प्रकार धारा 81 उन कार्यों के लिए बचाव का उपबन्ध करती है जो अति आवश्यकता के कारण व्यक्ति द्वारा जानबूझकर किये जाते हैं। इन मामलों में अभियुक्त को इस बात का ज्ञान रहता है कि वह अपराध कर रहा है। धारा 81 के लागू होने के लिए निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है—

1. व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला कार्य विधि की दृष्टि में अपराध हो।
2. ऐसा कार्य उस व्यक्ति द्वारा स्वयं की या अन्य व्यक्ति की शारीरिक या सम्पत्ति की हानि को रोकने के लिए किया गया हो।
3. कार्य को आपराधिक आशय से नहीं किया गया हो।
4. कार्य सद्भावनापूर्वक किया गया हो।
5. जिस हानि को बचाने के लिए कार्य किया गया है, वह कारित हानि से बड़ी हो।

(h) **बालकपन—** भा0दं0सं0 की धारा 82 एवं 83 अल्पव्यस्कों के दायित्व के सम्बन्ध में उपबन्ध करती है। धारा 82 में उपबन्धित मुक्ति जहां पूर्ण मुक्ति है, वही धारा 83 सशर्त है। धारा 82 के अनुसार कोई भी बात अपराध नहीं है जो

सात वर्ष से कम आयु के बच्चे द्वारा की गई हो।' यह माना जाता है कि सात वर्ष से कम आयु का बच्चा अपने कार्य की प्रकृति को नहीं समझता। उसे अक्षम गुड़िया (doli incapax) माना जाता है। अतः वह उसके परिणामों के लिए भी उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। सात साल से कम उम्र के शिशु पर यदि कोई आरोप लगाया जाता है तो कि वह इसलिए अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं है क्योंकि वह सात वर्ष से कम है। धारा 83 के अनुसार – "कोई बात अपराध नहीं है जो सात वर्ष से ऊपर तथा बारह वर्ष से कम आयु के ऐसे शिशु द्वारा की जाती है जो समझ की परिपक्वता के अभाव में अपने आचरण की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ हो।"

धारा 82 में जहाँ शिशु को पूर्ण उन्मुक्ति प्राप्त है वहीं धारा 83 के अन्तर्गत यह उन्मुक्ति सशर्त है। अर्थात् सात साल के ऊपर तथा बारह वर्ष से कम उम्र का शिशु आपराधिक दायित्व से मुक्त रखा जा सकता है, यदि यह साबित कर दिया जाये कि उसमें समझने की शक्ति का पूर्णतया अभाव था। अर्थात् वह अपने कार्य की प्रकृति को समझने में पूर्णतया असमर्थ था। इस प्रकार धारा 83 का सार 'परिपक्व समझ' शब्दावली में है अर्थात् यदि शिशु अपने किये गये कार्य की प्रकृति को समझ सकता है कि उसके द्वारा किया गया कार्य अच्छा या बुरा है या उसके क्या परिणाम हो सकते हैं तो इस धारा का लाभ नहीं प्रदान किया जा सकता है।

(i) मत्तता—भा0दं0सं0 की धारा 85, 86 मत्तता की स्थिति में किए गए कार्यों के लिए आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति का प्रावधान करती है। धारा 85 के अनुसार—'कोई बात अपराध नहीं है जो ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है जो उसे करते समय मत्तता के कारण उस कार्य की प्रकृति या यह कि जो कुछ वह कर रहा है वह दोषपूर्ण है या विधि के अनुकूल है, जानने में असमर्थ है। परन्तु यह

तब जब कि वह चीज जिससे उसको मत्तता हुई है, उसके ज्ञान के बिना या इच्छा के विरुद्ध दी गई हो।”

जब कोई व्यक्ति कुछ करते समय मत्तता के कारण उस कार्य की प्रकृति को नहीं जानता, या वह यह जानने में असमर्थ है कि जो कुछ वह कर रहा है वह दोषपूर्ण या विधि के प्रतिकूल है, तो वह बात अपराध नहीं है। यदि जिस चीज से उसकी मत्तता हुई है वह उसे उसके ज्ञान के बिना या इच्छा के विरुद्ध दी गई थी। धारा 85 नशे में अपराध कार्य करने वाले व्यक्ति को आपराधिक उत्तरदायित्व से मुक्ति दिलाती है, यदि अपराध कार्य करते समय नशे के कारण वह—

- 1— कार्य की प्रकृति जानने में असमर्थ था, या
- 2— वह यह जानने में असमर्थ था कि जो कुछ वह कर रहा है वह दोषपूर्ण है या विधि के प्रतिकूल है तथा
- 3— वह चीज जिससे उसको नशा हुआ है, उसके बिना ज्ञान या इच्छा के विरुद्ध दी गई थी।

धारा 86 के अनुसार, उन दशाओं में जहां कि कोई किया गया कार्य अपराध नहीं होता जब तक कि वह किसी विशिष्ट 'ज्ञान' या 'आशय' (Specific Knowledge or intent) से न किया गया हो, कोई व्यक्ति जो वह कार्य महत्ता की हालत में करता है इस प्रकार बरते जाने के दायित्व के अधीन होगा मानों उसे वही ज्ञान था जो उसे होता, यदि वह मत्तता में न होता तब तक कि चीज, जिससे उसे मत्तता हुई थी, उसे उसके ज्ञान के बिना या इच्छा के विरुद्ध न दी गई हो।

- (j) **मत्तता**— सामान्य शब्दों में 'सहमति' एक प्रत्यक्ष चित्त की क्रिया है, अर्थात् यह स्वतंत्र इच्छा की एक अभिव्यक्ति है जो किसी कार्य का समर्थन

सकारात्मक ढंग से करती है। अपराध के बाद का समर्थन उसे वैध नहीं बना देता।

धारा 90 के अनुसार कोई सहमति वैध सहमति नहीं है, यदि वह—

- 1— किसी व्यक्ति द्वारा क्षति के भय के अधीन दी जाती है, या
- 2— किसी व्यक्ति द्वारा तथ्य के भ्रम के कारण दी जाती है, या
- 3— किसी विकृतचित्त व्यक्ति द्वारा दी जाती है, या
- 4— किसी नशे के अधीन व्यक्ति द्वारा दी जाती है, या
- 5— बारह वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति द्वारा दी जाती है।

धारा 87 के अनुसार, कोई बात जो मृत्यु करने या गम्भीर चोट पहुंचाने के आशय से न की जाये और वह किसी ऐसे व्यक्ति की सहमति से जो 18 वर्ष से अधिक आयु का हो, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहमति दिये जाने के बाद किया गया हो, अपराध नहीं होती। जैसे—‘क’ और ‘य’ ओमादार्थ आपस में पट्टेबाजी करने को सहमत होते हैं। यहां हानि उठाने की हर एक की सम्मति विवक्षित है, और यदि ‘क’ यथानियम पट्टेबाजी करते हुए ‘य’ को उपहति कारित कर देता है, तो क कोई अपराध नहीं करता।

धारा 88 के अनुसार कोई बात, जो मृत्यु कारित करने के आशय से न की गई हो, किसी ऐसी अपहानि के कारण अपराध नहीं है जो उस बात से किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके फायदे के लिए यह बात सद्भावनापूर्वक की जाये, जिसने अबहानि को सहने, या उस अपहानि की जोखिम उठाने के लिए चाहे अभिव्यक्त, चाहे विवक्षित सम्मति दे दी हो, कारित हो या ऐसा करने या आशय हो या कारित होने की सम्भावना ज्ञात हो, यह सिद्धान्त ऐसी मृत्यु कारित करने के सम्बन्ध में है जो आशयपूर्वक नहीं की गई तथा दूसरे को लाभ पहुंचाने के सन्दर्भ में हुई हो। उदाहरण के लिए डाक्टर से आपरेशन से समय हुई मृत्यु आदि। परन्तु यह धारा ऐसे कार्य को जो स्वयं अपराध, को विधिमान्य नहीं बनाती है।

इस धारा के तहत सहमति देने वाले व्यक्ति की आयु उल्लेख नहीं किया गया है।

धारा 89, बालक अथवा विकृतचित्त व्यक्तियों के सम्बन्ध में उनके फायदे के लिए किए जाने वाले कार्यों को संरक्षण प्रदान करती है। इस धारा के प्रावधानों के तहत ऐसे व्यक्तियों की तरफ से उनके संरक्षक द्वारा सहमति दी जा सकती हैं। परन्तु वह ऐसी सहमति नहीं दे सकता है जो ऐसे व्यक्ति की मृत्यु या गम्भीर चोट के कार्य से संलग्न हो। भयंकर रोक निवारण के लिए सहमति दी जा सकती है परन्तु वह कार्य—

- 1— मृत्यु कारित करने के उद्देश्य से न किया गया हो।
- 2— ऐसा न हो जिससे मृत्यु होने की सम्भावना का पूर्ण ज्ञान हो।

धारा 92 गर्भित सहमति के सम्बन्ध में प्रावधानों को उपबन्धित करती हैं। इस धारा के अनुसार आपातकालीन परिस्थितियों में जिनमें व्यक्ति की सहमति प्राप्त करना सम्भव नहीं होता है तो सद्भावनापूर्वक उस व्यक्ति के लाभ के लिए कार्य किया जा सकता है। परन्तु यह धारा आशयपूर्वक किये गये कार्यों को संरक्षण नहीं देती है।

(k) सद्भावनापूर्ण सूचना— भा0दं0सं0 की धारा 93 के अनुसार “सद्भावनापूर्वक” की गयी सूचना उस हानि के कारण अपराध नहीं है जो उस व्यक्ति को हो, जिसे वह दी गयी है, यदि वह उस व्यक्ति के फायदे के लिए दी गयी है। जैसे—‘क’ एक शल्य चिकित्सक सद्भावनापूर्वक एक रोगी को सूचित करता है कि उसकी राय में वह जीवित नहीं रह सकता। इस आघात के फलस्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। ‘क’ ने कोई अपराध नहीं किया भले ही वह रोगी की मृत्यु होने की सम्भावना को जानता था।

धारा 93 उन व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करती है जो किसी व्यक्ति को उसके फायदे के लिए कोई सूचना देते हैं, परन्तु उस सूचना के कारण उनको

हानि हो जाती है। यह धारा विशेषकर डाक्टरों द्वारा मरीजों को उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में दी जाने वाली सूचना के सम्बन्ध में लागू होती है।

(u) तैयारी व प्रयत्न में अन्तर— तैयारी व प्रयत्न में अन्तर रेग बनाम चीसमैन (1862) वाद में लार्ड ब्लैकबर्न ने किया। इनमें अन्तर इस प्रकार है:—

- 1— अपराध करने के लिए साधनों को एकत्रित करना तैयारी है, जबकि इन साधनों का स्पष्ट प्रयोग करना प्रयत्न है।
- 2— तैयारी करना मात्र, कुछ अपवादों को छोड़कर, अपराध नहीं होती, जबकि प्रयत्न एवं स्वतंत्र अपराध है।
- 3— तैयारी की अवस्था में अपराधी का दुराशय प्रकट नहीं होता है, जबकि प्रयत्न में दुराशय प्रकट होता है।
- 4— तैयारी की अवस्था में अपराध से विमुख होने का अवसर होता है, परन्तु प्रयत्न में अपराध से विमुख होने का अवसर समाप्त हो जाता है।

(v) प्रयोजन या हेतु (Motive) — प्रयोजन या हेतु का तात्पर्य एक ऐसी प्रेरणा है, जिससे उत्प्रेरित होकर मनुष्य अपने आशय का निर्माण करता है। किसी इच्छित उद्देश्य की उत्कण्ठा तृप्ति के लिए इच्छा जिस दिशा में स्वेच्छया चल पड़ती है वह दिशा अथवा उद्देश्य प्रयोजन या हेतु कहलाता है। प्रयोजन कृत्य को प्रोत्साहित करता है जबकि आशय कृत्य के परिणाम की कामना करता है। प्रयोजन का पक्ष गतिशील होता है तथा यह दूरक्ष (Telescopic) होता है। उदाहरण स्वरूप यदि अ किसी हथियार से ब को चोट पहुंचाता है और ब की मृत्यु हो जाती है तो विधि इस बात की उपधारणा करती है कि अ ने हत्या के आशय से ब को चोट पहुंचाई थी तथा अ का चोट पहुंचाने का हेतु उसकी सम्पत्ति लेना रहा होगा। दण्ड का मानक निर्धारित करते समय अपराध का प्रयोजन या हेतु जितना अधिक प्रबल तथा सुनिश्चित होगा, दण्ड भी उतना अधिक कठोर होगा।

प्रयोजन या हेतु साबित करने के लिए अभियोजक बाध्य नहीं है परन्तु जब यह साबित हो जाता है, तब न्यायालय को इसकी पर्याप्तता का परीक्षण करना आवश्यक हो जाता है। किसी अपराध की सिद्धि के लिए आशय सिद्ध करना आवश्यक है परन्तु प्रत्येक अपराध में हेतु होना आवश्यक नहीं है।

(w) भा0दं0सं0 की धारा-5

भा0दं0सं0 की धारा-5 अधिनियम की प्रयोज्यता के अपवाद का वर्णन करती है। इसके अनुसार अधिनियम के प्राविधान तीन दशाओं में लागू नहीं होते हैं-

- (1) **राज्य कृत्य**- भारत सरकार की सेवा के अफसरों पर यह अधिनियम लागू नहीं होगा जबकि वे भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे हैं और सम्प्रभु शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं।
- (2) **मार्शल लॉ**- सैनिकों, नौसैनिकों या वायु सैनिकों द्वारा विद्रोह और अभित्यजन को दण्डित करने वाले अधिनियम के उपबन्धों पर यह अधिनियम लागू नहीं होगा। मार्शल लॉ के दौरान किये गये कार्यों के लिए "क्षतिपूर्ति अधिनियम" (Indemnity Act) पारित किया गया है।
- (3) **विशेष या स्थानीय विधि**- यदि कोई विशेष या स्थानीय विधि, जो स्वयं में पूर्ण कोड हों, उस पर भा0दं0सं0 लागू नहीं होगी।

(x) निगम का आपराधिक दायित्व-

भा0दं0सं0 की धारा-2 के अनुसार भारत के भीतर किये गये अपराधों के लिए प्रत्येक 'व्यक्ति' अधिनियम के अधीन दण्डनीय होता है। 'व्यक्ति' शब्द की परिभाषा अधिनियम की धारा-11 में बताई गई है। धारा-11 के अनुसार "व्यक्ति" शब्द के अन्तर्गत कोई भी कम्पनी या संगम या व्यक्ति निकाय, चाहे वह निगमित

हो या नहीं, शामिल है।” इस प्रकार व्यक्ति शब्द में केवल प्राकृतिक व्यक्ति ही नहीं बल्कि न्यायिक व्यक्ति भी शामिल है। अतः व्यक्ति शब्द में कम्पनी, संस्थायें आदि भी शामिल हैं। निगम एक प्रकार की प्रकल्पना है और यह अपना कार्य अपने अभिकर्ताओं के माध्यम से करती है। अतः यदि किसी निगम द्वारा कोई अपराध होता है तो माना जायेगा कि निगम के उन सदस्यों ने ही उसे किया है, जिन्होंने कार्य में भाग लिया था। इस प्रकार कोई निगम भी आपराधिक दायित्व के अधीन होता है। धारा-11 की परिभाषा में अनियमित कम्पनी को भी शामिल किया गया है। अतः एक फर्म को भी अपराध के लिए विचारित एवं दण्डित किया जा सकता है। परन्तु उन सभी प्रकरणों में जहां किसी सीमित दायित्व वाली कम्पनी के लिए अपराध करना दुष्कर है या जहां अपराध के लिए दुराशय आवश्यक है या जहां कारावास ही एकमात्र दण्ड है, वहां सीमित दायित्व वाली कम्पनी को अभियोजित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार निगम के आपराधिक दायित्व के मुख्यतः दो अपवाद हैं:—(1) जहां अपराध की प्रकृति के कारण निगम द्वारा अपराध किया जाना सम्भव नहीं है। जैसे—हत्या, चोट, द्विविवाह आदि। (2) ऐसे अपराध जिनके लिए जुर्माने के दण्ड का प्राविधान नहीं है।